लापता

लापता

प्रभाकर माचवे

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

वह समुन्दर किनारे आकर बैठ गया। दूर-दूर तक बालू फैली हुई थी। कुछ काले पत्थर थे। सुनसान था। 'बीच' पर के नारियल के पेड़ हवा में सिर हिलाते थे। शायद समुन्दर ही उनकी भाषा जानता हो। समुन्दर खिलखिला कर हँस रहा था। पेड़ गर्दन हिला-हिलाकर उनके साथ संवाद कर रहे थे।

एक टूटी हुई नाव बालू मे फँसी हुई थी। कुछ मछुआरे लड़के वहाँ जाल सुखा रहे थे। शाम का समय था। और उसके लिए समस्या थी कि वह रात को कहाँ जायेगा। क्या करेगा?

वह घर से भागकर किसी ट्रेन में बैठकर, बिना टिकिट, इतनी दूर तक तो आ गया। उसने जान-बूझकर ऐसा रूप बना लिया था कि वह पागल है और वह सब अपना-पुराना अता-पता भूल चुका है। फिर उसके मन मे आता था कि घरवालों से ऐसा गुस्सा नही करना चाहिए। पर वहाँ उसे कोई प्रेम देनेवाला नही था। सौतेली माँ, रात-दिन गाली देती, कटु वचन कहती। बाप को अपने परीक्षा में फ़ेल होते रहने वाले दुबले-पतले बेटे की सिवा मारने के, और सुधि लेने की फुरसत नही थी। और भाई-बहन आत्मकेन्द्रित थे। यही सबसे बड़ा था और निकम्मा था।

वहां वह वैसे ही बडी देर तक बैठा था। तब एक बूढा उसके पास लकडी टेकता-टेकता आया। दोनों की बातें शुरू हुई:

बूढा: "तुम कौन हो? और क्या करते हो?"

नौजवान: "इन दोनो सवालो के जवाब मेरे पास नही हैं?"

बूढ़ा: "तो यहां क्यों बैठे हो?"

नौजवान: "और कुछ करने को नही है, इसलिए सूर्यास्त देख रहा

हूं।"

बूढा : "उसमे तुम क्या देखते हो ?"

नौजवान : "कितना सुन्दर है !"

बूढा : "क्या सौन्दर्य से पेट भरेगा ?"

नौजवान : "आप वह सामने चर्च देख रहे हैं। उसमें घंटी बज रही है। आपकी उस आवाज़ मे आस्था है। क्या उससे पेट भरेगा ?"

बूढा : "अब थोड़ी देर बाद रात हो जायेगी। और यह क्षणिक सौन्दर्य समाप्त हो जायेगा।"

नौजवान : "मैं उसे पेटभर कर देखूंगा। वही आज शाम का मेरा आहार है ?"

बूढा : "कहां रहते हो ?"

नौजवान : "नही जानता ?"

बूढा : "कहां जाओगे ?"

नौजवान : "नही जानता ?"

बूढा : "कहा से आये हो ?"

नौजवान : "मैं नही जानता। आप भी नही जानते। कोई भी नही जानता।"

बूढे को दया हो आई। बोला—"मेरे साथ चलोगे ?"

नौजवान ने कहा—"क्यों नही ?"

बूढा ईसाई था। वह अपने घर पर उसे ले गया। उसकी वृद्धा पत्नी मेरी और एक नौजवान लडकी घर में थी जिसका नाम था एडिथ।

नौजवान अपने पूर्वेतिहास के बारे मे कुछ भी बताने को तैयार नही था। मानो सब भूल चुका था। ऐसे स्मृतिहीन व्यक्ति को घर में क्यों ले आये, इस बात पर मेरी और पीटर में बड़ी बहुत बहस हुई।

मेरी : "कैसे-कैसे लोगों को घर में ले आते हो ?"

पीटर : "हूं...।"

मेरी : "ऐसे लोगों को घर में रखने खिलाने, आश्रय देने से कोई फायदा ?"

पीटर : "हूं...।"

मेरी : "बोलते क्यों नहीं ? दो दिन देखूंगी, बाद में निकाल दूंगी। पता नहीं कहां का चोर-उचक्का, गुंडा ही हो। अपनी भाषा तक नहीं जानता।

पीटर : "अंग्रेज़ी तो जानता है। क्या हर आदमी जो घर में आता है, मलयालम अवश्य जाने ही, ऐसा कोई साइनबोर्ड बाहर क्यों नहीं लगा देती ?"

मेरी : "तुम तो हर वक्त मज़ाक करते रहते हो। यह मज़ाक का विषय नहीं है।"

पीटर : "फिर क्या करूं ? बाइबिल में लिखा है 'सब मनुष्यों से प्यार करो।' मैं सिर्फ उसी वचन को जीवन में उतार रहा हूं।"

मेरी : "बड़े आये बाइबिल वाले ! तुमने कभी अपने 'बॉस' को प्यार दिया ? रात-दिन खिट-खिट चलती रहती है। तुमने मेरी मां—यानी अपनी सास को इज्जत दी ? तुमने कभी...जाने दो। यह तालिका लंबी है। बस अजनबियों को ही आप प्यार देना जानते हैं, और उसमें भी अगर वह कहीं स्त्री हुई, तो क्या कहने हैं..."

पीटर : "आज की रात वह रहेगा। कल लोग पूछेंगे, क्या काम कर सकता है ? और कुछ नहीं तो अपने अखबार के प्रेस में ही काम आ जायेगा।"

मेरी : "ऐसे भुलक्कड़ों और पागलों से आपका प्रेस चल चुका।"

पीटर : "कोशिश करके देखना चाहिए।"

मेरी : "यहां पत्थर से पानी निकाले जाने की-सी बात है। इसके चेहरे-मोहरे से मुझे तो छटा हुआ बदमाश जान पड़ता है।"

पीटर : "अपनी-अपनी दृष्टि है।"

इतने में एडिथ आ गई। उसने भी वही सवाल पूछा—यह नवागन्तुक महाशय कहां के हैं ? क्या करते हैं ? कितने दिन रहेंगे, इत्यादि। उत्तर में सिर्फ उनका नाम मिला जो अब पिताजी के दोस्त थे। यह नया आदमी खतरनाक लगता है; अंदरूनी बातें वह जानता है। कैसे ?

—क्या वह गुप्तचर है ?

—क्या वह कोई पहुंचा हुआ साधु है ?

—क्या वह सचमुच का मुसीबतजदा है ?

—क्या वह घर छोड़कर भागकर आया प्राणी है ?

—क्या वह वेश छिपाये कोई शरणार्थी है ?

—क्या वह पूर्णत. स्मृति-हारा है ?

कई तरह की शंकाएं मन में उठते हुए भी इस अनाम नवयुवक को अपने घर में पीटर ने आश्रय दे दिया। वह थका-मादा था; जो भी खाने को मिला खाया और वह सो गया।

सवेरे उठा तो उसने अपने साथ की स्लीपिंग बैग को खोला। उसमें दो जोडी कपडे थे। नहाया। अपने कपड़े धोकर के सुखाने डाले। पीटर की छोटी-सी रहने की जगह में वह बाहर के कमरे मे आ बैठा। बड़े से अनेक बैंडोंवाले रेडियो पर खबरें चल रही थी, उनके बाद खोये हुए व्यक्तियों की सूचनाएं सुनाई गईं। यह दिल्ली रेडियो है—

—एक नवयुवक जिसने नीली-भूरी पतलून और चेक का लाल बुश्शर्ट पहन रखा है, कद 5 फीट, उम्र तीस लाल, क्लीन शेवन, माथे के बाल घुंघराले, आखें नीली-हरी, घर से भाग गया है। वह बी०ए० में पढ़ता था। अंग्रेजी, हिन्दी दोनों भाषाएं जानता है। उसका नाम अरविंद है। यदि किसी को पता लगे तो वह निम्न पते पर सूचना दे। खोज निकालने वाले को 2000 रुपये इनाम दिये जायेंगे। निशानी बायें गाल पर ठुड्डी के पास तिल है। सूचना देने का पता :

शिवनाथ मलहोत्रा
सेक्टर तीन, क्वार्टर न० एक सौ आठ,
रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110022

पहले उसने हिकारत से मन में सोचा—मेरे दाम सिर्फ दो हजार रुपये ?

फिर पूरी सूचना सुन लेने के बाद उसने स्विच ऑफ करके रेडियो बंद कर दिया। दाढ़ी मूंछ तो बढ़ा ही ली थी। सो चेहरे की एक पहचान 'क्लीन शेवन' से वह बच गया। बालों का घुंघरालापन और आंखों का रंग तो वह छिपा नहीं सकता था। हां कपड़े उसने बदल डाले थे। और हिन्दी भी वह जान बूझकर, बिगाड़ कर टूटी-फूटी बोलता था। यहां

सुदूर केरल में वह अपनी मातृभाषा बंगाली बता दे तो क्या बिगड़ता है ? अब उसने सोचना शुरू किया कि कोई नाम जरूर लेना चाहिए, जो बंगालियों की तरह हो ?

शरच्चन्द्र ? बड़ा 'कॉमन' नाम है।

बंकिमचन्द्र ? ऐसा नाम बडा 'अनकॉमन' है।

उसने सोचा—'देवीप्रसाद' नाम सबसे अच्छा रहेगा। कलकत्ता वह कभी नहीं गया था पर हां वहां काली का मंदिर है। और सुनते हैं कि वहां देवी के नाम पर बहुत नाम हैं, पुरुषों के भी—जैसे कालीकिंकर, कालीप्रसाद, कालीकृष्ण, श्यामाचरण, श्यामाप्रसाद, श्यामानंद, ताराशंकर, तारापद, देवीपद, देवीदास, देवीप्रसाद...बस-बस देवी का प्रसाद ही सबसे अच्छा नाम है। अब अपनी शिक्षा और कार्यकलाप का क्या किया जाये ? बता दूंगा मैट्रिक हूं। किसी अखबार में काम करता था। जहां जरूरत होगी बता दूंगा राजनैतिक कारणों से भाग आया। पुलिस मेरे पीछे लगी है।

उसने सोचा कि यह बातें 'एडिथ' को ही धीरे-धीरे बतानी ठीक होंगी। क्योंकि उसके मन में सहानुभूति जगाना अधिक उचित होगा। एडिथ की मां मेरी तो मुझे फूटी आंखों से देखना पसन्द नहीं करती थी। कहूंगा—'कहीं काम लगा दे। किसी पत्र पत्रिका में अंग्रेजी की। या छोटी-मोटी क्लर्की ही सही। या फिर प्राइमरी स्कूल में टीचरी।' मैट्रिक करने में कोई सर्टीफिकेट नहीं पूछेगा। बी०ए० एम०ए० के साथ प्रमाणपत्र आदि का चक्कर है। सो अब अरविंद मलहोत्रा साहब की नयी 'इमेज' तैयार हो गई।

देवी प्रसाद सेन, बंगाल के रहने वाले, मैट्रिक, एक राजनैतिक पत्र में संवाददाता, राजनैतिक कार्यकर्ता भी, वहां पुलिस पीछे पड़ी थी सो भाग आये। यहां तक सब मामला ठीक हुआ। पर एक बहुत बड़ी अड़चन सामने आ गयी, जिसका उसने पहले से विचार नहीं किया था।

एडिथ के साथ बातें करते हुए उसने चुपचाप यह सब बातें बता दीं। मां और बाप दोनों काम करने के लिए बाहर चले जाते थे। एडिथ वयः प्राप्ता थी, और पर-पुरुष में उसका कुतूहल स्वाभाविक था।

आखिर दो तीन दिन बाद उसने कुतूहलपूर्वक पूछ ही लिया :

"देवी तुम कौन से राजनैतिक दल मे विश्वास करते हो ?"

आव देखा न ताव देवी ने कह दिया, "गुप्त संगठन मे। हम समाज को पूरी तरह बदल डालेंगे। रक्तक्रांति से अलावा कोई भी रास्ता हमें पसंद नहीं। लोग हमे मार्क्सिस्ट (एम० एल०) कहते हैं। पर हम उनसे भी अधिक वाम-पंथी हैं।"

"देवी, यह बुरी बात तुमने कही। पापा को पता लग जायेगा, तो वह एक दिन भी तुम्हें घर में नही टिकने देंगे। वे कट्टर क्रिश्चियन हैं।"

"तो क्या हुआ ? हम पूंजीपतियो, साम्राज्यवाद के एजटों, सामंतवादियो, प्रतिक्रियावादी रूस-परस्त, चीन-परस्त तथाकथित साम्यवादियो, लुंपेन समाजवादियो आदि सबके विरुद्ध हैं। हमे क्रिश्चियन या हिन्दू या मुस्लिम से क्या लेना देना है ? धर्म तो व्यक्तिगत वस्तु है। वह आज पूरी तरह वर्गाक्रांत है।"

"मुझे तो तुम समझा दोगे। क्योकि (धीरे से) इतना अधिक रात-दिन घर मे माता-पिता से धर्म के बारे मे सुनती रहती हूं कि अब मेरी धर्म में कोई आस्था नही है। लेकिन पापा नही मानेंगे···"

"तो इस बात को छिपा देते है। ऐसा कहूंगा कि मैं एक बिना किसी पार्टी के स्वतन्त्र पत्र के कार्यालय मे कार्य करता था। बस इस पर तुम राजी हो जाओगी ?"

"ठीक है ! मुझे तुम खतरनाक आदमी लगते हो। क्रांतिकारियों के प्रति मेरे मन मे बचपन से कुतूहल है। मैंने अपनी भाषा मलयालम में शरच्चंद्र का 'पथ के दावेदार' पढा है उसमे सव्यसाची के बारे मे पढा है। मैंने जैनेन्द्रकुमार की 'सुनीता' पढी है। उसमे वह हरिप्रसन्न है। मैंने यशपाल का 'दादा कामरेड' पढ़ा है। क्रांतिकारी आग की तरह होते है। उनसे दूर ही रहना अच्छा। ताप सुखद होती है। उत्ताप घर जला देता है···"

उस दिन इतनी ही बात हुई। पर एडिथ फिर सोचने लगी—'क्यों नौजवान यों नक्सल हो जाते हैं ? क्या उनके सामने और कोई रास्ता नही है ?'

2

पापा से एडिथ ने कहा कि इस राह भूले नौजवान पर उपकार करें। कहीं काम पर लगा दें तो दोहरे लाभ हैं। एक तो ईसाई होते हुए 'गुड सैमेरिटन' का सवाब मिलेगा। दूसरे अब बूढ़े पिता को घर मे एक सहायक, सहारा भी मिल जायेगा। तब तक मेरा मेडिकल कोर्स पूरा हो जायेगा। मुझे गल्फ एरिया में बड़ी लम्बी चौडी तनख्वाह वाली नौकरी भी मिल जायेगी। फिर तब तक देखी जायेगी। यह बंगाली बाबू तब तक भाग जायेगा। सो अच्छा हो कि इसे ईसाई ही बना लिया जाये। एक और चेला मूंडने का सुख क्या कम है—पीटर ने सोचा।

पीटर ने देबी से पूछा—"अब क्या करोगे?"

"जो आप कहें?"

"मेरे कहने की बात नहीं। यहां की भाषा तो तुम जानते नही?"

"ऐसा काम दिलवाइये कि जिसमे भाषा का व्यवधान आड़े न आये।"

"यही सोच रहा हूं। पत्र के लिए तो भाषा ज्ञान की बहुत आवश्यकता हो जाती है। मैं मलयालम जानता नहीं। और पूरे केरल में जहां 65 से ऊपर मलयालम के पत्र हैं, अंग्रेजी का कोई अखबार नही था। (अभी हाल में एक शायद निकला है।) ऐसी दशा मे क्या करें?"

"मेरा भी अखबार पर कोई आग्रह नही। जो काम कहेंगे, कर दूंगा। *अखबार न सही, कहीं अपने प्रभाव से, हमें लगवा दीजिये, किसी और* काम में…।"

चर्च की ओर से एक हाईस्कूल चलता था। उसमे एक क्लर्क की जगह खाली थी। वहां पीटर के कहने से देबी को काम मिल गया।

अब वह कमरा तलाश करने लगा। जगह मिलनी मुश्किल थी। परन्तु कुछ दिनों के लिए चर्च की डार्मिटरी मे ही देबी रहने लगा।

वहा उसकी मुलाकात कई तरह के पादरियों और ईसाई विद्यार्थियों और छात्राओं से होने लगी। वह जान-बूझकर किसी से बहस नही

छेड़ता था। चुपचाप सबकी बातें सुनता था। देवी को लगा कि क्या हिंदू क्या ईसाई, क्या मुस्लिम, क्या सिख सबके सब एक तरह से दिशाहारा और शरणार्थी हैं। विचारों की दुनिया के मायावी हैं। उनका कोई सिद्धांत नहीं, विश्वास नहीं, मतवाद नहीं—यह बात सच नहीं थी। सब एक खूंटे मे बधे थे। इसी से वे और लोगों से नफरत करते थे, जो उनके 'मत वाले' न हों।

पर उनकी सबकी आत्मा 'ला-पता' थी।

वे धर्म की प्रधान पुस्तक को मानते थे। पंडित या पादरी या पीर को मानते थे। उसके पास उन्होने अपनी बुद्धि रहन रख दी थी। शंका करना ही हर धर्म में मना था। वह धर्मद्रोह था। तर्काप्रतिष्ठानात्।

देवी को लगा कि जब आदमी अपने ऊपर ओढ़ा हुआ, या जन्म से उसके नाम की तरह चिपका हुआ धर्म का लेबल छोड़ देता है; या उससे परे सोचता है, तो उसके सामने प्रश्न होता है कि वह असली इन्सान वह मूलभूत मनुष्य क्या है? क्या उसमें आत्मा, कोई सद्‌असद् का विवेक करने वाला दिव्यांश नहीं होता? वही तो मुख्य चीज है। वही खोकर वह क्या पाता है?

एडिथ ने धीरे-धीरे उससे पूछ ही लिया—"देवी, तुम ईसाई क्यो नहीं हो जाते?"

वह विचारपूर्वक, हर शब्द तौल कर बोला—"आप कहती हैं तो सोचूगा। पर सच बताऊं धार्मिक नहीं हूं। किसी भी धर्म का ठप्पा लगाने से क्या होगा?"

एडिथ—"क्यों?"

देवी—"मैं पापी हूं···"

एडिथ—"इसीलिए तो धर्म की शरण लेनी चाहिए।"

देवी—"जो पाप मनुष्य करता है उसे कोई धर्म धो नहीं सकता।"

एडिथ—"ईसाई धर्म मे सब तरह के पापियों के लिए पनाह है, शरण है।"

देवी—"धर्म शुरू ही इस बात से होते हैं कि मनुष्य पाप छोड दें।"

एडिथ—"हां,"

देबी—"पर मेरे पाप तो मेरी मृत्यु के बाद ही शायद छूटेंगे। वे जन्म से ही शुरू हुए। जन्म से ही जुड़े हुए हैं।"

एडिथ—"यह कैसे हो सकता है ?"

देबी—"अगर कोई बच्चा पाप की सन्तान हो, तो उसके सिर पर वह सिक्का जनम भर के लिए लग जाता है।"

एडिथ—"ईसाई धर्म में ऐसा नही है।"

देबी—"और अगर उसने बचपन मे कोई पाप किया हो तो ?"

एडिथ—"बच्चे सब निष्पाप होते हैं। ऐसा कभी हो ही नही सकता कि बच्चा पापी हो। वह पाप पुण्य से परे होता है।"

देबी—"कई कलाकार भी अपने आपको ऐसा ही मानते हैं।"

एडिथ—"वे झूठ बोलते हैं…"

देबी—"हो सकता है। पर तुम धर्मांतर की बात क्यों उठाती हो ?"

एडिथ—"हमें उससे सुख होगा।"

देबी—"केवल तुम्हारे सुख के लिए मैं अपना धर्म तज दूं ?"

एडिथ—"नहीं हमारा धर्म श्रेष्ठ है, इसलिए तुम उसमें आओ।"

देबी—"जो आदमी एक बार धर्म बदल सकता है, वह दुबारा नही बदलेगा इसकी क्या गारंटी है ?"

एडिथ—"धर्म कोई कपडा नही जो चाहे तब उतारा, चाहे तब पहन लिया।"

देबी—"यही तो मैं कहता हूं।"

एडिथ—"पर हिन्दू धर्म तो ऐसा कड़ा बंधन नही। वह उस अर्थ में 'मजहब' नही है। वह तो केवल एक जीवन-पद्धति है।"

देबी—"क्यों बहस कर रही हो एडिथ ? किसी भी धर्म में विश्वास न करना भी तो एक जीवन-पद्धति हो सकती है।"

एडिथ—"ऐसे लोगों को हम क्या कहें ? मनुष्य नही मानते। ऐसे अधर्मी मनुष्य में और पशु में क्या अंतर है ?"

देबी—"क्या पशु बनना पाप है ?"

एडिथ—"हां।"

देवी—"मनुष्य ने धर्म कब निर्माण किया ?"

एडिथ—"क्यों ?"

देवी—"उसके पहले वह क्या था ? यानी आज, अब 1983 वर्ष ईसा को सूली पर दिये हुए। ईसवी सन तभी से चला। उसके पहले सब आदमी क्या थे ? जानवर ?"

एडिथ—"यह कैसे हो सकता है ?"

देवी—"क्यों, कोई सभ्यता उससे पहले थी ?"

एडिथ—"हां, यूरोप मे ग्रीक सभ्यता थी।"

देवी—"यूनान के लोग तो कई देवी-देवता मानते थे। मूर्तिपूजक थे। जैसे हिन्दू···।"

एडिथ—"हां ईसा के पहले भी धर्म रहे होंगे ?"

देवी—"चीन मे कनफ्यूशस से पहले के धर्म। भारत मे बुद्ध और महावीर और मिस्र मे पितर पूजा और ईरान मे सूर्य पूजा···"

एडिथ—"यह सब प्रकृति के तत्त्वों को ईश्वर मानना धर्म थोड़े ही है।"

देवी—"फिर धर्म क्या है ?"

एडिथ—"ईसा को मानना, सलीब पर उसे चढाया गया यह मानना ईसा की पवित्र वाणी 'बाइबिल' को मानना···"

देवी—"बस ? देखो एडिथ, अगर मैं कहूं कि मैं केवल मनुष्य को मानता हूं। उसी मे ईश्वर को देखता हूं तो तुम इस वाक्य को क्या कहोगी।"

एडिथ—"सोचना होगा···"

देवी—"यह वाक्य मेरा नहीं; परम ईसाई टालस्टाय का है। अगर यह तुम भी मानती हो तो उस अर्थ में मैं ईसाई पहले से ही हूं, समझ लो। फिर और ईसाई बनने की क्या जरूरत है ?"

एडिथ चुप हो गयी। इस तरह की बातचीत से देवी को वह धर्मांतर के लिए राजी नहीं कर सकती, यह देखकर एक दिन बूढे पीटर ने देवी को चर्च ले जाने की बात की। वहां छोटामोटा काम दिलाने की बात की। ऐसे सब आश्रयहीन लोगो के लिए सबसे बड़ा आश्रय स्थान 'चर्च' नामक

संस्था में हैं, यह भी बताया पर देबी ने नौकरी भी ले ली पर वह ईसाई नहीं बना।

देबी सोचता रहा—नाम, स्थान, जाति-पांति, धर्म, देश, भाषा यह सब मनुष्य के साथ कितने और कहां तक जुड़े रहते हैं?

उसने नामांतर किया।

उसने स्थानांतर किया।

परन्तु जाति-पांति, धर्म के संस्कार उसके साथ कितनी गहराई से जुड़े हैं, जैसे उसकी त्वचा का वर्ण; जैसे उसके बालों का घुघराला होना; जैसे उसकी आखों का नीलापन; जैसे उसकी कई आदतें—चलने की, बोलने की···

उससे कोई मैट्रिक का सर्टीफिकेट मांगता तो वह बताता वह बांग्ला देश से भागकर आया हुआ हिन्दू रेफ्यूजी है। केरल में बंगाली कम थे। उसका यह मुखौटा उस पर बराबर बना रहा।

कुछ महीनों तक देबी ने वहां चर्च में नौकरी की। कुछ पैसे बचाये, और एक दिन उसने सोचा कि यहां रहना ठीक नहीं।

इसका कारण हुआ। खाड़ी के देशों से वहां केरल के समुद्र के किनारे पर कई लोग 'स्मगलिंग' का व्यवसाय करते थे। सोना और हीरे-जवाहरात और पता नहीं क्या-क्या लाते थे। उनके चक्कर में वह आ गया। और उनके दल का एक सदस्य बन गया। इस नाते उसे बैंक में काम करना पड़ा। वहां से उसका तबादला गोआ हो गया। ईसाइयों से उसकी बढ़ती हुई मैत्री और मेल-जोल ने उसे बहुत फायदा पहुंचाया। वह दिन के समय देबी सेन बैंक का कर्मचारी था। और रात के समय वह स्मगलरों का दिया हुआ नाम मिस्टर 'के' था।

एक ही व्यक्ति में कितने व्यक्ति छिपे रहते हैं? अरविंद मलहोत्रा को उसके माता-पिता और बचपन के मित्र और दिल्ली के लोग भूले नहीं होंगे। पर वह सबको भुला चुका है। देबी सेन को केरल के समुद्र किनारे के उस छोटे-से गांव के पादरी, पादरी की लड़की एडिथ, और चर्च के पियानो सिखाने वाले, और डार्मिटरी के लोग और बैंक के मैनेजर और उस दिन पिकनिक पर गये थे, तब मिले रंगीन तबीयत मछुआरे—सब भूल

चुके होंगे। वह उन्हें भुलाने की कोशिश में है कि यह तीसरी भूमिका उसके सामने आ गई। उसमें गुप्तता होने से वह बहुत सावधानी और सतर्कता से मिस्टर 'के' से अपना कोई संबंध नही है (सिवा ज़बानी आदेश और पालन के) यह जानता है। इसीलिए वह जान-बूझकर गोआ की बीचों पर बीटनिक और हिप्पियों के अड्डों मे जाता है। पर उनके साथ पीने का बहाना करके नही पीता; चूंकि कही अधिक पी जाने पर उसके मन के भीतर का चोर कही बाहर न निकल पड़े। उसकी जबान से कुछ न निकल जाये, इसलिए वह यथासभव मित्र नही जुटाता। वह जानता है, जीवन मे वेहद अकेला है। और अकेलापन दुखदायी चीज है। पर और दूसरा उपाय भी कहा है? अकेलेपन मे ही आदमी अपना सही पता तलाशता रहता है।

वह इसीलिए नौजवान होकर किसी के प्रेम में नहीं पडा। न वह किसी राजनैतिक प्रतिबद्धता में फंसना चाहता है। उसका विशुद्ध लक्ष्य है, इस क्षण सिर्फ पैसा कमाना। और वह अब किसी भी साधन से, किसी भी प्रकार से, किसी भी मार्ग से पैसा कमाना चाहता है। सब ऐसा कर रहे हैं, वह क्यों न करें?

एक-दो वर्षों के अंदर-अंदर देबी सेन के कमरे मे कई इंपोर्टेड चीज़ों का अंबार लग गया। ऐसे मे एक दिन एक अजीब घटना घटित हुई।

3

एक दिन वह शाम को पंजिम में एक होटल में बैठा था कि दूर से एक पहचाना हुआ-सा आदमी पास आता दिखाई दिया। पहले तो उसने अपना चेहरा मेनू-कार्ड की ओट में छिपाया, पर मुसीबत की मार, वह आदमी ठीक उसके सामने वाली कुर्सी पर आन बैठा।

उसी ने बोलना शुरू किया—"मेरा नाम प्रशांत मलहोत्रा है, और मैं दिल्ली से आया हू।"

देबी ने कहा—"ठीक है। आप मुझसे क्या चाहते हैं?"

"आप जानते नहीं, मेरा भाई खो चुका है। तीन बरसों से उसका पता नहीं चलता। हमारे माता-पिता परेशान हैं। इस खोये हुए बेटे को पाने के लिए उन्होने कितने विज्ञापन दिये। रेडियो पर संदेश दिये। झाड-फूक भी करवाई। ओझा-ज्योतिषियो को भी दिखाया। कोई पता नही चलता।"

कुतूहल से देबी सुनता रहा। 'हूं, हूं' कहता रहा। जब प्रशांत की पूरी कहानी पूरी हो गई तब देबी बोला—"क्या और कुछ आपको कहना है? माफ कीजिये, मुझे एक जरूरी काम है, मैं चलूंगा।"

उसकी बात से और पता नही किस अज्ञात कारण से प्रशांत के मन में यह शंका बस गई कि जरूर यह अरविंद ही होगा, जो देबी सेन कहकर यहां छिपा हुआ है। पर इस बात का पक्का सबूत तो कोई था नही। प्रशात ने बैंक मे जाकर देबी के मित्रो से—जो कि बहुत थोड़े थे—खोजने की कोशिश की कि वह कहा रहता है, कहां-कहां जाता है। उसकी रुचिया क्या है? क्या उसकी कोई स्त्री-मित्र है? वह बीच-बीच में नौकरी से गायब हो जाया करता था, इतना ही उसे पता लगा। वह कहां जाता है, क्या करता है—यह सब जानना प्रशांत के लिए आवश्यक हो गया। इसके लिए प्रशांत ने यह सोचा कि उसे भी देशांतर करना होगा। ऐसे सीधे-सीधे तो कुछ भी ठीक से पता नहीं चलेगा।

प्रशात कुछ दिनों के लिए पणजी (पजिम) से चला गया।

देबी ने सोचा कि चलो, छुट्टी की सांस ली जाये। यह जो मेरे ही भाई मेरे ऊपर जासूसी कर रहे थे, उससे निजात तो पाई।

पर यह खयाल सिर्फ खयाल ही रहा। क्योंकि एक बार संदेह का बीज जो पड जाता है, वह सहसा मिट नही जाता। अभिज्ञा मनुष्य की छाया की तरह पीछा करती रहती है।

देबी सेन इस समय एक बहुत बड़े स्मगलर के चक्कर में था, जिसका नाम गुप्त रखने के लिए उसे 'एच० आर०' कहते थे। वह एकदम विला-

यती ढंग से रहता था। और उसकी बोलचाल से पता ही नहीं चलता था कि वह हरीराम, या हरमेन राठौड़, या हरदेवसिंह रारेवाला, या हबीबुर रहमान, या हेनरी रॉबिन है। हो सकता है वह हशीश या हेरॉइन का 'रिटेलर' होने से उसने यह नाम लिया हो। पर उसकी कहानी बहुत कुछ 'कंगाल से करोडपति' वाली थी। उसके कुछ विदेशी संपर्क थे और पैसा उसके लिए कोई चीज नहीं थी। वह हवाई जहाज से ही घूमता था। आज काठमांडू तो कल काबुल तो परसों कुवैत। स्विटजरलैंड और सैन फ्रांसिस्को भी चक्कर लगाता था और हांगकांग और हेनोलुलू के भी, बैंकाक और सिंगापुर के भी।

अब एक दिलचस्प बातचीत सुनिये। इससे कहीं भी पता नहीं चल सकता कि कोई भी आदमी, कोई भी स्मगलिंग या 'असामाजिक' अपराध कहीं कर रहा हो। 'एच० आर०' की खूबी यह थी कि सदा उसके साथ एक नई महिला (जो अपने आपको सुंदरी समझती थी, या सुंदरी बनने का यत्न करती थी) अवश्य होती थी।

पजिम के एक अज्ञात कोने में कम प्रकाश वाले होटल के कोने में दूसरी बोतल खुलने के बाद, यह संवाद शुरू होता है। इसमें केवल तीन समभागी हैं 'एच० आर०', मिस डिसूजा और देवी सेन—जिसका इस समय नाम वालावलकर है।

एच० आर०—"तो तुम्हारी रवलनाथ की जात्रा के बारे में क्या राय है?"

मिस डिसूजा—"ये 'जात्रा' क्या होता है, मिस्टर वालावलकर?"

वालावलकर—"पूर्णिमा की रात को सज-धजकर सब औरतें निकलती हैं। आधी रात तक गाना-नाच चलता है। फिर एक डंडे का जुलूस निकलता है। जो उठाता है, उसके शरीर में कुछ अज्ञात शक्ति आ जाती है। उस समय लोग उससे प्रश्न पूछते हैं। जो जवाब मिल जाता है, सच निकलता है।"

मिस डिसूजा—"हम क्रिश्चियन लोग को जाने में कोई 'आबजेक्शन' (आपत्ति) तो नहीं!"

वालावलकर—"सब तरह के लोग वहां पहुंचते हैं। सब जात के, सब

धर्मों के। वह तो बड़ा भारी कार्नीवाल, फेस्टीवल (त्यौहार) है। गरीब, अमीर सब पहुंचते हैं। मैं तो हर साल जाता रहता हूं।" (यह उसने झूठ बोला था, क्योंकि उसे यहां आये हुए ही एक साल नहीं बीता था)।

एच० आर०—"कुछ बिज़नेस भी वहां होता है।"

वालावलकर—"धर्म में क्या बिज़नेस, बॉस ?"

एच० आर०—"धर्म आजकल एक बिज़नेस हो गया है।"

वालावलकर—(हंसकर) "इसीलिए बिज़नेसवाले धर्म की बड़ी-बड़ी बातें करते हैं।"

इतने में मिस डिसूज़ा एक बड़े खान-मालिक को आते हुए देखती है और उसे हाथ के इशारे से बुलाती है।

परिचय कराया जाता है। सेठ मफतलाल हैं—दीव-दमन में आपका बड़ा ब्यौपार है। कई 'माइन्स' के मालिक है।

एच० आर० (अतिरिक्त रुचि लेकर)—"ओ, आई सी। कुछ हम आपकी सेवा कर सकते हैं ? (ताली से बैरा को बुलाकर) आपके लिए एक 'बड़ा पैग'।"

सेठजी—"नहीं, नहीं, हम इसका सेवन नहीं करते है।"

एच० आर०—"सौरी। आप क्या पियेंगे ? फ्रूट-जूस या डवल सेवन ?"

सेठजी—"मुझे नीबू पानी चलेगा…"

एच० आर०—"सोडा उसमे मिक्स करें ? या न करें ?"

मिस डिसूज़ा—"आपको रवलनाथ की जात्रा के बारे में कुछ मालूम है ?"

सेठजी—"हां, हा, मेरी बड़ी बेटी का ब्याह ही नहीं हो रहा था। उसे हिस्टीरिया के दौरे आते हैं। हम उसे ले गये थे। ऊपा अच्छी हो गई।"

एच० आर०—"क्या उसकी शादी तै हो गई ?"

सेठजी—"नहीं तो…।"

एच० आर०—"ये अपने दोस्त वालावलकर हैं, ये अभी शादीशुदा नहीं हैं। इनसे क्यों नहीं उसे मिलवा देते हैं ?"

सेठजी की आंखें चमक उठीं। उन्होंने झट से होटल की कुर्सी छोड़कर बाहर खड़ी अपनी कार के ड्राइवर को कहा—"फौरन जाओ और ऊषा को ले आओ घर से।"

एच० आर०—"आप क्या करने गये थे ?"

सेठजी—"बेटी को बुला लेता हूं।"

एच० आर०—"ओ, इतनी अधीरता ? इस समय आप देख रहे हैं। हम सब जरा 'चढ़े हुए' हैं। ('हाई-अप' हैं)।"

अब ऊषा आए तब तक कुछ बातचीत चलती रही। सेठजी ने पूछा एच० आर० से—"आपके ये दोस्त क्या करते हैं ? उनका नाम क्या है ?"

"वालावलकर नाम है। गोवा के सारस्वत हैं…।"

"हमारी बेटी तो मछली खाती नहीं। आपके घर में तो मछली खाते होंगे।"

वालावलकर की ओर से एच० आर०—"ये तो एकदम योरपीयन ढंग से रहते हैं। बड़े बैंक में हैं। बड़े ओहदे पर। विदेश के दौरे करते रहते हैं। हमारे बिजनेस में आप ही की बड़ी मदद है।"

"अच्छा, अच्छा," सेठजी बोले, "मगर फिर तो आपको दान-दहेज की भी बड़ी मांग होगी। हम तो ठहरे गरीब आदमी…"

एच० आर० ने ठहाका लगाया—"साल की पचास लाख आमदनी अगर गरीबी कहलाती है, तो ऐसी गरीबी हटाना आसान है। देश में हैं ही कितने करोड़पती, लखपती ?"

वालावलकर चुपचाप सुन रहा था। रहा नहीं गया। पूछा—"लडकी पढी-लिखी कितनी है ?"

"बी० ए० में थी, तभी से हिस्टीरिया लग गया। पता नहीं क्यों, कैसे ?"

इतने में ड्राइवर ने भीतर आकर सूचना दी कि ऊषा आ गई है। क्यों पापा ने इतनी जल्दी में बुलाया है, उसकी समझ में नहीं आ रहा है।

सेठजी ने कहा—"भीतर भेज दो।"

4

मंदिर में कथावाचक बोल रहे थे। भावुक जनता सुन रही थी।

"महाभारत, प्रजागरपर्व, उद्योगपर्व से विदुर ने कहा हुआ केशिनी का आख्यान यों है :

धृतराष्ट्र—"हे महाबुद्धिवान् विदुर, तू अत्यंत विचित्र भाषण कर रहा है। वह सुनते हुए मुझे संतोष नही होता। इसलिए और वचन सुना।"

विदुर—"हे विभो, सब तीर्थों में स्नान और सब प्राणियों से समता यह दोनों तुल्य फल देने वाले हैं। या यों कहें कि हम दोनों मे समता ही प्रधान है। इसलिए हे राजा, तू इन कुमारों मे, कौरवों और पाडवों में, समदृष्टि रख। इससे इस लोक में परम कीर्ति होकर मरण के बाद तुझे स्वर्ग प्राप्त होगा। हे नरश्रेष्ठ, जब तक मनुष्य की पुण्यकीर्ति इस लोक में प्रसिद्ध होती है, तभी तक वह स्वर्गलोक में मान्य होता है।"

इस विषय में बहुत पहले केशिनी के लिए विरोचन का सुधन्वा से संवाद हुआ था। वह पुरातन इतिहास प्रसिद्ध है। हे राजा, 'केशिनी' नामक एक अद्वितीय रूपवती राजकन्या थी। उसे उत्तम पति चाहिए था। इसलिए उसने स्वयंवर रचाया। वहां विरोचन नामक एक दैत्य आया। तब केशिनी ने उस दैत्येन्द्र से कहा—

"हे विरोचन, ब्राह्मण श्रेष्ठ है या दानव श्रेष्ठ है? मेरे मत से ब्राह्मण ही श्रेष्ठ है, क्योंकि ऐसा न होता तो सुधन्वा ब्राह्मण तेरे साथ एक आसन पर कैसे बैठा होता?"

विरोचन ने कहा—"हम कश्यप प्रजापति की प्रजा है, इसलिए श्रेष्ठ हैं। यह सब लोग हमारे है। हमारे आगे देव और ब्राह्मण सब नीचे हैं!"

केशिनी—"हे विरोचन, रुको! तुम इस स्वयंवर मंडप में ही बैठो। कल सवेरे सुधन्वा ब्राह्मण आने वाला है। उस समय तुम दोनों एक जगह आ जाना, तब मैं तुम दोनों में श्रेष्ठ कौन है, इसका निर्णय

करूंगी।"

विरोचन ने कहा, "ठीक है"। और दूसरे दिन सुधन्वा और विरोचन दोनों एक जगह आ गये। ब्राह्मण पास आते देखकर केशिनी उठ खड़ी हुई। उसने आसन-पाद्यादिक अर्पण करके उसका सम्मान किया। तब विरोचन ने ब्राह्मण से प्रार्थना करी—कि "इस सुवर्ण सिंहासन पर मेरे पास आकर बैठो।"

यह सुनकर सुधन्वा ने कहा—"हे प्रह्लाद पुत्र, तुम्हारे इस सुवर्णासन को हाथ से स्पर्श कर मैं आदर व्यक्त करता हूँ, पर तुम्हारे साथ एक आसन पर मैं कभी नहीं बैठूंगा।"

उस पर विरोचन ने सुधन्वा ब्राह्मण का उपहास किया और कहा—"हे सुधन्वा, मेरे साथ इस सुवर्ण-आसन पर बैठने की पात्रता तुझमें नहीं है। मेरे आसन से कनिष्ठ काष्ठासन या वेत्रासन तुम्हारे लिए ठीक होगा।"

सुधन्वा ने कहा—"हे दानव, पिता-पुत्र, दो विप्र, दो क्षत्रिय, दो वृद्ध-वैश्य या दो शूद्र एक आसन पर बैठ सकते हैं। उनके अलावा और किसी को परस्पर आधे आसन पर बैठने का अधिकार नहीं है। जब मैं उच्च आसन पर बैठता था तब तुम्हारा पिता प्रह्लाद नीचे बैठकर मेरी सेवा करता था। तब तू बालक था। अपने घर में सुख से बड़े हुए तुझे इस सभा का शिष्टाचार क्या मालूम होगा? तू कुछ नहीं जानता।"

विरोचन—"हम दोनों में श्रेष्ठ कौन?" हम इस प्रश्न का निर्णय करने के लिए मैं अपना समस्त सुवर्ण, धेनु, अश्व और असुरों का सब वित्त दांव पर लगाता हूँ। हे ब्राह्मण, हम विशेषज्ञों से यह प्रश्न पूछें।"

सुधन्वा—"हे विरोचन, सुवर्ण, गौएं, घोड़े सब तुम अपने पास रखो। हम अपने प्राणों को दांव पर लगाकर ज्ञाताओं से पूछें।"

विरोचन—"ठीक है। प्राणों की बाजी लगाकर हम किसके पास जायें? क्योंकि देव और मानव उनके सामने मैं कभी भी नहीं जाऊंगा।"

सुधन्वा—"प्राणों की बाजी लगाकर हम तुम्हारे पिता प्रह्लाद के पास ही जायें। फिर तो ठीक है? तुम्हारा पिता प्रह्लाद पुत्र के हित के लिए कभी भी असत्य भाषण नहीं करेगा।"

विदुर ने आगे कहा कि—"हे धृतराष्ट्र, प्राणों की बाजी लगाये दोनों क्रोध में प्रह्लाद के पास जा पहुँचे। उन्हें देखकर प्रह्लाद ने मन में सोचा—इन दोनों का जन्म-जन्म का वैर है, इसलिए दोनों एक साथ घूमते हुए कभी दिखाई नहीं देंगे। ऐसा होते हुए आज दोनों एक ही मार्ग से, एक साथ यहां क्यों आ रहे हैं ? दोनों सांपों की तरह क्रुद्ध हैं। इसलिए पहले मैं विरोचन से प्रश्न करता हूं—"वत्स विरोचन, आज तक मैंने तुम दोनों को कभी एक साथ नहीं देखा। ऐसा होते हुए तुम आज एक साथ कैसे घूम रहे हो ? पुत्र, तेरी इस सुधन्वा ब्राह्मण से मैत्री है क्या ?"

विरोचन—"हे तात, इस सुधन्वा से मैंने मैत्री नहीं की। परंतु हम दोनों ने प्राणों की बाजी लगाई है और इस प्रश्न का निर्णय प्राप्त करने तुम्हारे पास आये हैं। मैं तुम्हें सत्य पूछ रहा हूं, इसलिए तुम असत्य मत बताओ।"

प्रह्लाद—"हे ब्राह्मण, आप मेरे लिए पूज्य हो, अतः प्रथम मेरे इस मधुपर्क को स्वीकार कीजिये !"

ऐसा कहकर उसने अपने सेवकों से कहा—"पहले इस सुधन्वा ब्राह्मण के लिए मधुपर्क और शुभ्रवर्ण पुष्ट गौ जल्दी ले आओ।"

यह सुनकर सुधन्वा ने कहा—"हे प्रह्लाद, मार्ग में हम थे तब मधुपर्क ग्रहण किया ही है। अब पहले हम प्रश्न का निर्णय करें; उसी से सब मधुपर्क मुझे मिल जायेगा। मैं जो प्रश्न पूछ रहा हूं इसका सत्य और निश्चित उत्तर दो—ब्राह्मण श्रेष्ठ या विरोचन श्रेष्ठ ? यह हमारे विवाद का विषय है।"

प्रह्लाद—"हे विप्रर्षे, विरोचन मेरा अकेला बेटा है और तू साक्षात् ब्राह्मण मेरे सामने है। ऐसे समय तुम दोनों के वाद का निर्णय हम कैसे करें ? हे भगवान, तुम पूज्य हो। यदि तुम्हारे विरोध में मैं कुछ बोलूंगा तो ब्रह्मद्वेष का दोष मुझे लगेगा, और विरोचन मेरा पुत्र होने से उसके विरुद्ध निर्णय देने से पुत्रघात का दोष मुझे लगेगा।"

सुधन्वा—"पुत्र को गाय या दूसरा प्रिय धन दीजिये, परंतु हे बुद्धिमान, हारे विवाद में आप सत्य वचन ही बोलिये, यही उचित है।"

प्रह्लाद ने पूछा—"हे ब्राह्मण, वाद में सत्य या असत्य कोई भी निर्णय न देने वाले को या अन्याय से निर्णय देनेवाले को कौन-सा दुःख प्राप्त होता है, यह मुझे बता।"

सुधन्वा ने कहा—"पति अपना सान्निध्य छोड़कर सपत्नी के पास जाने पर स्त्री को उस रात को कैसे दुःख होता है; या द्यूत मे पराजित पुरुप जैसे खेद से रात बिताता है; या दिन-भर भार वहन कर थके हुए मनुष्य का सारा बदन दुखता है, इसलिए रात-भर जैसा क्लेश सहन करता है; उस नाटक की दुःखमय रात अन्याय का निर्णय करने वाले पुरुप को सहनी पड़ती है। जिसे मन में आश्रय नही मिलता, उसे क्षुधार्त होकर द्वार के बाहर खड़े रहना पडता है और जो असंख्य शत्रुओं से घिरा कष्टापन्न है ऐसे पुरुप जैसा दुःख असत्य गवाह देनेवाले को सहना पडता है। भूमि के लिए असत्य बोलने वाले के सर्वस्व का नाश होता है। इसलिए हे प्रह्लाद, भूमितुल्य केशिनी के लिए तू असत्य भाषण न कर!"

प्रह्लाद ने निर्णय दिया कि—"हे विरोचन, इस ब्राह्मण का पिता अंगिरा मुझसे श्रेष्ठ है; यह सुधन्वा तुमसे वरिष्ठ है और इसकी माता तुम्हारी माता से प्रशस्यतर है। इसलिए इस विप्र ने तुझे जीता है। वही तुम्हारे प्राणों का स्वामी है, यह मेरा निर्णय है।"

पुत्र को ऐसा कहकर प्रह्लाद ने सुधन्वा की ओर मुडकर कहा--"हे ब्रह्मन न्याय से तुम्हें अर्पित किया हुआ पुत्र विरोचन तुम मुझे वापिस दो, ऐसी मेरी प्रार्थना है।"

सुधन्वा ने कहा—"प्रह्लाद, चूँकि तुमने धर्म की बात की, मोह से तुम झूठ नही बोले, इसलिए तुम पर प्रसन्न होकर तुम्हारे पुत्र के दुर्लभ प्राण मैं तुम्हें वापिस देता हूँ और केशिनी राजकन्या के पैर हलदी से नहलाकर, मेरे सामने विरोचन से उसका विवाह तू करा दे। यह राज-कन्या इसी की भार्या बने।"

विदुर ने धृतराष्ट्र से कहा—"यह कहानी सुनाने का तात्पर्य इतना ही है कि भूमि के लिए असत्य भाषण मत करो। अरे, पुत्र के लिए झूठ बोल कर पुत्र और अमात्य दोनों के साथ अपना विनाश मत करो। पशु का पालन करने वाले गोपाल की तरह वेद हाथ में लाठी लेकर

मानव का रक्षण नहीं करते हैं। तो जिन्हें जिनका रक्षण काम है उन्हीं मनुष्यों को वे उस तरह की सुबुद्धि देते हैं।

"वेदशास्त्र कपटाचरण करनेवाले झूठे आदमी का पाप से रक्षण नहीं कर सकते। पंख फूटते ही जैसे पक्षी अपना घोसला छोड़कर उड जाता है, वैसे ही वेद ऐसे धार्मिकों का अंतकाल मे त्याग करते हैं। यह सब दृष्टांत देकर मैं यही कहना चाहता हूं कि हे राजा, तुम्हारा दैव प्रतिकूल है और तुम्हारा अध्ययन निष्फल है।"

प्रवचन समाप्त हुआ। कथा-वाचक ने अपना पोथी-पत्रा संभाला। सब अपने-अपने घर जाने लगे। पर सेठजी और सेठानीजी थोड़ा पीछे रुके रहे। उन्हें पता था कि कथा-वाचक जी कुछ ज्योतिष भी जानते हैं, तो उनके चरणो में दक्षिणा रखकर उन्होने पूछना आरंभ किया :

"महाराज, हमारी एक चिन्ता है।"

"सो क्या है ?"

"हमारी बेटी विवाह योग्य है। पर उसका विवाह ही नहीं होता।"

"ऐसा क्यों है ?"

"हम कारण नहीं जानते।"

"हम बताते हैं। उसका प्रेम कहीं हो गया था। वह उसी के साथ विवाह करना चाहती थी। आपने मना कर दिया।"

"यह सच है।"

"फिर दोष उसका है या आपका ?"

सेठ-सेठानी थोड़ी देर चुप। अपना दोष स्वयं सहज कबूल करनेवाले दुनिया मे कितने कम व्यक्ति होते हैं।

"तो इसका प्रायश्चित-परिमार्जन भी आपको ही करना होगा।"

"सो कैसे ?"

"अब उसकी राय पूछकर ही आप विवाह करें। अपना भार उस पर न लादें। उसी से नुकसान होता है।"

"शादी-ब्याह जन्म-जन्म का संग-साथ है। इसलिए उसकी जौहरी से विवाह तै करना ठीक नही। कई विलायत से डिग्रीधारी होने पर भी

उसके लिए बंगाल या दिल्ली या अन्य किसी भी प्रदेश में दहेज देकर भी, ऊंचा पढा-लिखा वर मिलना मुश्किल हो गया है। ये सवेरे ही चले जायेंगे। तब तो एक रात हमारे पास समय है। उसी में हम वर के बारे में जान लें।"

कथावाचक सोचने लगे। उन्होंने पैतरा बदला—"ग्रहशांति करानी होगी। आपके कुछ दुष्ट ग्रह जमा हो गये हैं!"

सेठ-सेठानी ने इस बात पर उनसे विदा ली। बेटी से बढ़कर उनका एक ही देवता है—पैसा! पैसे के लिए वे कुछ भी कर सकते थे। पैसा हो तो एक क्या अनेक वर प्राप्त कर लिए जा सकते हैं।

कथावाचक समझ गये। सेठजी जा रहे थे तो उनसे कहा—"पैसा तो ठीक है। पर यह खर्च जो आप करेंगे वह धर्म विधि के कारण मे लगेगा। हमें पैसा जमा करके क्या करना है? हमारी तो कथावाचकी से काम चल जाता है। पर आप ध्यान रखें—लडकी पागल हो जाएगी। उसे बीच-बीच में बेहोशी के दौरे आते हैं। वे बढ जायेंगे। आप दुबारा शांत चित्त से सोच लें। राहु और शनि की कुदृष्टि है...।"

पर पैसा खर्च करने की बात सुनते ही सेठजी वहां कहा रुकने वाले थे।

5

ऊषा भीतर आई तो लजाती हुई। उसने आसमानी रंग की साडी पहन रखी थी और उसी रंग की गहरी शेड का ब्लाउज। लड़की सावली थी पर नाक-नक्श नीखे थे। आखें बडी-बडी थीं। वहां बैठे लोगों को देखकर वह भांप गई कि यह वधु-परीक्षा का मामला है।

वह और सकुचाकर सेठजी के पास बैठ गई। धीमे से पूछा—"पापा, आपने इतनी देर रात गये, और यहां मुझे क्यों बुलाया? सब खैरियत

तो है ?"

सेठजी—"नहीं-नहीं···।"

ऊषा—"मैं समझी आपका वही पीठ और कमर का दर्द फिर बढ़ गया होगा और डाक्टर को बुलाना हो तो मुझे बुलाकर कहना होगा। ड्राइवर से कहकर तो वैसा ही होता जैसे उस बार हुआ, वह खाली हाथ लौट आया था।"

एच० आर० समझ गया कि लड़की अपने बाप को बहुत चाहती और मानती है। उन्होंने ही शुरुआत की—"बी० ए० करने के बाद आगे पढाई का विचार है।"

"हां।"

"अजी अपने देश मे क्या रखा है ?एकदम आपका दाखिला अमेरिका की एक युनिवर्सिटी मे करा देते हैं। अपने पहचान वाले यहां-वहां, दुनियाभर मे हैं।"

सेठजी—"यह तो ठीक है एन० आर०; पर वहा की पढाई का खर्चा तो मेरे बस की बात नही।"

एच० आर०—"कौन कहता है कि आप खर्च करोगे। आप तो बेटी की शादी करा दो और जमाई और बेटी के दो हवाई टिकिट सीधे शिकागो के कटवा दो। बाकी हम सब देख लेंगे।"

"यह विचार तो उत्तम है। पर ऊषा की राय भी तो जान लेनी चाहिए। बेटी, विलायत जाओगी ?"

बेटी मौन ?

"बेटी, शादी करोगी ?"

बेटी मौन···।

"बेटी, देख दूल्हा घर पर खुद चला आया है, सिर्फ तुम्हारी 'हां' कहने की बात है। बाकी तो सब एकदम हो जायेगा।"

बेटी मौन···।

वालावलकर—"आप विवाह का मुहूर्त वगैरह नही देखते हैं ?"

सेठजी—"वह तो सेठानी को राजी करने के लिए सब 'ततीगो' करने ही पड़े हैं।" उसकी आप परवा मत करो। जरा-सा पैसा ज्यादा

दिया कि सब ग्रह-नक्षत्र अनुकूल कराके जो चाहे वह महीना, हफ्ता, दिन, घटिका हम पैसे से तै करा सकते हैं। पुरोहित और मुहूर्त तो अपनी मुट्ठी में हैं।"

वालावलकर ने सबसे कहा—"अर्थस्य धर्मो दास:"

एच० आर० ने चुटकी ली—"क्या सोच रहे हो पार्टनर, यह सौदा अच्छा है। अगले महीने ही बैंक से छुट्टी ले लो। एकाध महीना शिकागो हो आओ।"

"एकाध महीना ?" वालावलकर ने पूछा।

"नहीं, नहीं। मेरे कहने का मतलब—पढ़ाई-लिखाई इनको वहां की 'सूट' करती है या नहीं, देख लेना। फिर तो तुम्हारे लिए भी कुछ काम हम वहीं जुगाड़ लेंगे।"

इस सारे संवाद में ऊषा चुपचाप बैठी सुन रही थी। जैसे उसका अपना कोई मन नहीं है। बाप ने धकेला, वर के पास फेंक दिया। वर ने फेंका, पुत्र के पास रहने लगी—स्त्री को कोई स्वतंत्रता नहीं। वह मानो निरी गेंद है। ऊषा ने कहा—"पापा, अभी कोई निश्चय न कीजिये। बाद में सोचेंगे।"

"क्यों ? तुम भी लड़के को—वर को—कुछ पूछना चाहती हो तो पूछ लो।"

ऊषा ने एकदम दस सवाल पूछे।

"आपकी पढ़ाई कहां तक हुई ?"

"यही बी० कॉम।"

"क्या करते हैं ?"

"बैंक में हूं।"

"क्या वेतन है ?"

"यही अट्ठारह सौ माहवार।"

"घर में कितने लोग हैं ?"

"कोई नहीं है। अकेला हूं।"

"यहां नहीं, और कहीं तो होंगे···"

"नहीं, मेरा कोई सगा-संबंधी नहीं है। मैं अनाथ ही पैदा हुआ। अब

तक ऐसा ही संघर्ष करता रहा हूं—बिना किसी संबंधी के।"

"जो लोग ऐसे अकेले रहने के आदी होते है, उनका स्वभाव बहुत आत्म-केंद्रित हो जाता है।"

"यह सबके बारे मे सच नही होता।"

"आपकी हॉबी क्या है ?"

"संगीत।"

"कौन-सा ?"

"आपको कौन-सा प्रिय है ?"

"मैं भारतीय ललित संगीत पसंद करती हूं।"

"मुझे पाश्चात्य क्लासिकल संगीत पसंद है।" वालावलकर ने यों ही टाल दिया। उसने सोचा कि ऐसा कहना ही अधिक सुरक्षित उपाय है।

ऊषा चुप हो गयी।

"और कुछ, पूछना है ?"

"नही।"

"आप चाहें तो पूछें।"

"नहीं।"

यों पंजिम के एक होटल मे वालावलकर का विवाह तै हो गया।

परंतु प्रशांत चुप नही था। वह बराबर खोज-खबर टोहता रहा। बैंक से शादी के नाम पर वह छुट्टी और कर्ज भी ले रहा है। यहां तक उसे पता था। अब लडकी कौन-सी है और क्या करती है यह जानना उसके लिए आवश्यक हो गया था। पर कोई सुराग ही हाथ नही लग रहा था।

6

शिकागो जाने के लिए पासपोर्ट-साइज फोटो जहां वालावलकर ने खिच-

वाये, वहां से प्रशांत को पता लग गया।

बच्चू हिंदुस्तान से भागने के चक्कर में है, यह बात प्रशांत के मन में पक्की घर कर गई। अब क्या किया जाये? प्रशांत और उसके भाई की शक्लें बहुत कुछ मिलती-जुलती थी। स्टूडियो से वह फोटो लेकर प्रशांत ने दाढ़ी बढ़ानी शुरू की और दो मास के बाद उसने भी उसी स्टूडियो से वैसी ही फोटो खिंचवा ली। वह भी पासपोर्ट दफ्तर पहुंचा। यह तस्वीर दिखाकर उसने पता लगवाया कि अपना भाई जा कहां रहा है। तो पासपोर्ट पर 'यू० एस० ए०' (संयुक्त राष्ट्र अमेरिका) देखा। वहां जाकर यह बैंक का मामूली क्लर्क करेगा क्या?

प्रशांत ने यहां तक उनकी यात्रा रुकवाने की कोशिश की कि पासपोर्ट भी उसने बनवा लिया। दो पासपोर्टों के फोटो के साम्य के सहारे देवी की टोह ली पर जब यात्रा संपन्न हो रही थी, तब पता लगा कि देवी सेन की जगह वहां देवी सेन था ही नहीं, वह तो सदानंद बालावलकर था। प्रशांत के सारे प्रयत्न व्यर्थ हुए।

और एक दिन ऊषा और सदानंद 'पैन-ऍम' से बंबई से न्यूयार्क उड़ान भरकर चले गये। हवाई अड्डे पर पहुंचाने सेठजी, सेठानी, 'एन०-आर०' और उसके अंतर्राष्ट्रीय व्यापार-संघ के सदस्यगण आदि बहुत लोग उपस्थित थे। 'एन-आर०' ने व्यवस्था की थी कि जहाज सीधे न्यूयार्क न जाये—रास्ते में जहां-जहां उसका व्यापार था, वहां भी रुकता-रुकता जाये। अदन, बैरूत, रोम, फ्रांकफुर्त। ज़्यूरिख, लंदन होता हुआ वह न्यूयार्क-शिकागो जानेवाले थे। नव-दंपति और विलायत-दर्शन का शौक। कारण तो पर्याप्त था।

सदानंद के जिम्मे और भी गुप्त काम थे, जो केवल वह या 'एन० आर०' जानते थे। ऊषा खुश थी कि चलो शादी भी हुई और विदेश में आगे पढ़ाई भी करने को मिलेगी। ऐसी इस यात्रा का एक चरण था बैरूत में दो दिन रुकना।

अभी तक ऊषा को सदानंद के स्वभाव का पता नहीं लगा था। वह बहुत ही चुपचाप रहता।

सदानंद को भी ऊषा के मन की गहराई का अन्दाज़ नहीं लग सका।

था। दोनों का विवाह तो करा दिया गया था। पर दोनो एक-दूसरे के प्रति अजनबी थी। उन दोनों में एक तरह की दूरी और संभ्रम बराबर बना हुआ था। इसलिए कहीं भी जाते, तो बातें बहुत ऊपरी-ऊपरी, उडती-उडती होती थीं। जैसे बैरुत में :

सदानंद—"यहां अदन की तरह फ्रीपोर्ट है।"

ऊपा—"मुझे तो कुछ खरीदना नही। न मेरे पास इतना फॉरेन एक्सचेंज ही है।"

सदानंद—"पैसे की परवाह तुम क्यो करती हो। मेरे मित्र ने सब जगह व्यवस्था कर दी है। पैसा मिल जायेगा।"

ऊपा—"पर मैं जानती नही कि अमेरिका के लिए यहां से कुछ ले जाना ठीक होगा? अमेरिका मे तो सब चीजें मिल जाती हैं।"

फिर दोनों चुप।

सदानंद—"देखती हो यह है तो देश मुस्लिम, पर यहा सबसे ज्यादा ईसाई होने से सबका कल्चर एकदम पश्चिमी हो गया है। भापा भी अंग्रेजी और फ्रेंच ज्यादा लोग जानते हैं।"

ऊपा—"हा।"

सदानंद—"यहां ये लोग धर्म और भापा को एक नहीं मानते।"

ऊपा—"हू।"

सदानंद—"तुम क्या सोचती हो?"

ऊपा—"ऐसे गभीर विपयों पर मैंने ज्यादा सोचा ही नही।"

फिर बातचीत खत्म।

कभी ऊपा ने विपय छेडा—"देख रहे हो समुद्र किनारा कितना सुदर है।"

सदानंद—"हां।"

ऊपा—"वह बालू और समुद्र के किनारे के पेड और ऊंचे-ऊंचे मकान।"

सदानंद—"देख रहा हू।"

ऊपा—इन्हे देखकर तुम्हें क्या भारत की याद नही आती?"

सदानंद—"आती है।"

ऊषा—"वहां की तुलना में ये सब शहर कितने ज्यादा साफ-सुथरे हैं। लोग कितने खुले दिल से समुद्र में नहाते हैं। जीवन का आनंद लेते हैं…।"

सदानंद—"दोनों जगह की आबो-हवा अलग है। लोगों के स्वभाव अलग हैं।"

ऊषा—"सो तो है ही, पर…।"

सदानंद—"पर क्या ?"

ऊषा —"तुम मुझसे ठीक तरह से बोलते क्यों नहीं हो ?"

सदानंद—"बोल तो रहा हूं।"

ऊषा—"यह भी कोई बोलना है। 'हां', 'हूं', बस।"

सदानद—"ऊषा, तुम भी यही करती हो।"

ऊषा—"शायद मैं मूर्ख हूं। और हम दोनों में एक-सी रुचि के विषय नही हैं।"

सदानद—"ऐसा तुम्हारा भ्रम है। मैं तो सब विषयों मे रुचि लेता हूं।"

ऊषा—"पर तुम अपने पूर्व-जीवन के बारे में कुछ नही कहते। क्या तुम मुझसे कुछ छिपाना चाहते हो ?"

सदानंद—"शादी हो जाने के बाद एक-दूसरे का क्या छिपाव हो सकता है ?"

ऊषा—"मन छिपा रह सकता है। उसमें कई तरह के एक के भीतर एक दराज रहते हैं। मन एक गुफा है, जिसकी गहराई का पता ही नही लगता।"

सदानंद—"तो उस चक्कर मे पड़ो ही क्यों ?"

ऊषा— (गंभीर होकर) "मैं नही चाहती कि मेरा पति मुझसे दुराव करे।"

सदानंद—"यह दुराव नही, ऊषा, मेरा स्वभाव है। मैं बहुत कम बोलता हूं।"

फिर दोनों चुप।

यात्रा पर यही हाल रहा। क्या इटली में, क्या जर्मनी में, क्या स्विटज़रलैंड में। सब जगह सदानंद को पता नहीं क्यों बैंकों मे कुछ काम रहता

था। व्यवसाय का चक्कर ऐसा ही होता है। होटल में ऊषा को छोडकर सदानंद चला जाता। कहता, 'एन० आर०' के बहुत-से काम अधूरे है।

फ्रांकफुर्त मे एक बार रात को एक नाइट-क्लब जैसी जगह मे सदानंद ऊषा को ले गया। ऊषा के संस्कार ही दूसरे थे। उसे वह सब स्त्रियो का निर्वस्त्र होना और यों उत्तेजक नाच करना अच्छा नही लगा। वह कहने लगी—"छोडो यह सब, होटल वापिस चलें।" सदानंद को बड़े शहरों मे रहकर ये सब तमाशे देखने की आदत थी। पर ऊषा के लिए सब नया-नया था। उसे बहुत बुरा लगा कि पुरुष और स्त्रियां भी खूब पी रहे है और कोई सुन्दरी उन सबका सार्वजनिक अंग-प्रदर्शन करके मनोरंजन कर रही है।

धर्म तो अर्थ का दास बना ही था। यहां अर्थ भी काम का दास बन रहा है। सारे 'पुरुषार्थ' मानो 'स्त्रियार्थ' हुए जा रहे हैं। इस पर दोनों में खासी बहस हो गयी—

ऊषा—"स्त्री इन लोगों के लिए मानो केवल शरीर है।"

सदानंद—"ऐसी बात नही है। यूरोप मे, जर्मनी में, रूस में, इंग्लैंड में सब जगह बड़ी-बड़ी विदुषी महिलाए हुई है। बड़ी-बड़ी वीरांगनाएं हुई है। लेखिकाएं हुई हैं। कलाकार हुई हैं। इसलिए यह कहना कि सारे पश्चिम वालो के लिए स्त्री-मात्र एक 'वासना की देह' है। ठीक नही है।"

ऊषा—"फिर ऐसा सब स्त्री-रूप का व्यापार क्यों? पुस्तकों के कवर देखिये, सिनेमा देखिये, विज्ञापन देखिये…।"

सदानंद—"अगर चित्र मात्र से किसी पुस्तक की बिक्री बढ़ती हो तो वे लोग क्यों न वह करें? आल इज फेअर इन बिजनेस एंड वार।"

ऊषा—"यह सरासर स्त्रियों के साथ अन्याय है।"

बात यहीं तक आकर रुक जाती। दोनों जैसे दो चट्टानों के आमने-सामने खड़े हैं—बीच में समुद्र दहाड़ें मार रहा है।

7

अब आगे सारा यात्रा वर्णन देने से क्या लाभ ? सदानंद की शिकागो की, अमेरिका प्रवास की डायरी ही हाथ लग गई है, उसके कुछ अंश देता हू । कितने ही नाम बदले हों, जगहें और नौकरियां बदली हों, संस्कार तो भारतीय के इतने जल्दी बदलते नहीं, सो उस डायरी के अंश यहां देता हूं, जिससे सदानंद के मन की उथल-पुथल का कुछ चित्र मिल सके ।

"कल रात 31 दिसंबर को पुराना साल खत्म हुआ, नया साल लगा। रात के 12 बजे बड़ा जोशो-जश्न मनाया गया। न्यूयार्क में टाइम स्क्वेयर में सुनता हूं। लोग पागलों की तरह जमा हो जाते हैं। टस से मस होने को जगह तिल भर नहीं रहती। ज्यादह पीकर रश ड्राइविंग के माने कई कार-अपघात और दुर्घटनाओं में मृत्यु-संख्या सौ-दो सौ तो सहज एक बड़े शहर का एक रात का हिसाब होता है।

इस उम्मीद से कि कुछ बड़ा नया देखने को मिलेगा। मैं दक्षिण भारतीय विद्यार्थी मूर्था और उनकी पत्नी लक्ष्मी का निमंत्रण पाकर रात को उनके घर पहुंचा। दो कोरिया के विद्यार्थी, शांता और लक्ष्मी नारायण ग्यारह बजे रात की राह देखते हुए वक्त काट रहे थे। गप-शप चल रही थी। महिलाओं ने काफी पी। हम सब लोग बीअर के कैनों पर जुटे थे।

कोरियन लोगों से पता चला कि 'त्सारंग हमीदा' उनकी भाषा में 'मैं तुमसे प्यार करता (ती) हू का पर्यायवाची शब्द है। एक विद्यार्थी का नाम था किम, दूसरे का 'जय-हो-चाय।' चाय ने कहा "बौद्ध धर्म बड़ी कठिन भाषा में लिखा जाता है, ईसाई धर्म बहुत आसान भाषा में लिखा जाता है। उनकी किताबें ज्यादा बिकती है। यही दो धर्म कोरिया में हैं।"

मैंने पूछा—"दक्षिण कोरिया पर अमेरिकी जीवन पद्धति का असर कहा तक हुआ है ?"

चाय बोले—"खूब, काफी !"

मैंने पूछा—"कौन से बड़े लेखक हैं ?"

"एक नाम लेना मुश्किल है।" कहकर टाल गये।

और विद्यार्थियों की टोली आई। सब लोग सडक पर जा पहुंचे। खूब मदमाते थे। आज होटल, विशेषतः जलपान गृह (पब) देर रात तक खुले रहने वाले थे। सिनेमाघर के आगे बड़ा भीड़-भड़क्का था।

ऊषा यह देखकर बहुत चकरायी कि आज की रात सबको सबके साथ मनमानी करने की छूट है। हमारी होली से भी ज्यादह। तरुणियां किलकारियां मार रही थी। कुछ चीख रही थी। कुछ तरुण जबर्दस्ती कर रहे थे। फोटो खींचे जा रहे थे। काफी कैमरे क्लिक कर रहे थे।

भारतीय छात्र अधिक पीकर नाचने लगे। बराबर बारह बजे कागज की रंग-बिरंगी टोपियां और पी पी बाजे—आ गये। ज्यूक बाक्स से और रेडियो से जोर-जोर से गाने चल ही रहे थे। लोग झूम-झूमकर गाने लगे।

शास्त्री ने कहा—"शिकागो में बहुत अच्छे क्लब है। एक गोरे क्लब में भारतीयों को भी जाने देते हैं। मैंने अब नाच सीख लिया है!"

मैं मन ही मन कल्पना करने लगा कि यह मोटा गंजे सिर का कुरूप बौना भारतीय ऊंची तगड़ी अमेरिकी बालाओं के साथ कैसे नाचता होगा ? शायद वे ही इसे 'नचाती' होंगी।

मुझे उत्सुकता हुई तो पूछ बैठा—"आप भारत में थे, तब यह सब पश्चिमी नाच-गान जानते थे, सारा खान-पान करते थे क्या ?"

वे बोले—"बिल्कुल नहीं। यहीं आकर पहली बार बीअर चखी। मगर अब मेरा बीस पाउण्ड वजन बढ़ गया है। मैं आपको मेरी 'गर्ल-फ्रैंड' से मिलवाऊंगा..." इत्यादि।

पता नहीं क्यों मेरे मन में बड़ी जुगुप्सा बढ़ गई। एक अच्छी सजी-सजाई दुकान की कांच की दीवार के भीतर सजी-सजाई अर्द्ध-नग्न नारी आकृतियां खड़ी थीं। बाहर एक पियक्कड़ ने जोर से कै कर दी थी, उसके अवशेष गंधाते पड़े थे—मांस के छिछड़े, टूटी बोतलें और क्या-क्या ? मोटरें बदहवास दौड़ रही थीं, सब नियम अनुशासन की शृंखलाएं तोड़ते हुए।

मैं देर रात घर लौटा। ऊपा तो वैसे ही थक गई थी। सो गई। मुझे बड़ी रात देर तक पढ़ने का अभ्यास था। मैंने मार्गारेट पार्टन की पुस्तक 'दि लीफ एंड दि फ्लेम' उठा ली। न्यूयार्क हेरेल्ड ट्रिब्यून की प्रतिनिधि पत्रकार पार्टन भारत मे पाच बरस तक रह चुकी थी। बहुत ही मनोरंजक पुस्तक लगी। शुरू मे ही उसने लिख दिया था—"मुझसे कहा गया था कि भारत मे जाकर भारत की जनता से एकरूप बनो। मैं इसे मूर्खता समझती हूं। साड़ी पहन लेने से या थोड़ा-सा गांव मे घूम आने से कहीं भारतीय बना जाता है? मैं अमेरिकन हूं, और सदा रहूगी। इसमे मुझे कोई अपराध की भावना नही जान पड़ती। मैं भारतीय नही बन सकती।"

लेकिन हमारे सब युवक (और कुछ युवतियां भी) पूरी तरह अमरीकी बनने पर तुले हैं और अमादा हैं। क्या वे अपनी त्वचा का या आंखो की पुतलियों का, या बालो का रंग बदल सकेंगे?

इस विदेश मे आत्मा का रूप भी त्वचा के रग से निर्णीत किया जाता है! हे ईशू!! शायद यहां लोग लापता आत्मा की खोज मे लगे हैं।

डायरी आगे चलती रही। कुछ और हिस्से :

"सतारा के रहने वाले पाटील मिले। इस्लामपुर मे उनकी खेती थी। प्रेम-विवाह किया, घर के लोगों से लड़कर अंतर्जातीय विवाह किया। पत्नी छह माह बाद मर गई। तब से विरक्त, यहां चले आये। दो साल से साइंस मे रिसर्च करते है। यहां 'टाइलेट-सफाई' (पाखाने और बाथरूम साफ करना) का एक घटे मे दो डालर के हिसाब से काम किया। कनाडा से जो माल आता है, उसमें लकडी ढोने का काम करते हैं। अपनी कमाई पर खेती में रिसर्च कर रहे हैं। बीच मे भारत गये थे। एक मंत्री उनके रिश्तेदार थे। बोले—"यहां क्यों आते हो? यहा तुम्हे क्या मिलेगा? वहीं, अमेरिका मे रहो! आराम से रहो।"

कह रहे थे—"कल ही पी. एच. डी. का एक अमेरिकी विद्यार्थी मिला। वह भारत से लौटकर आया है। कलकत्ता मे वेश्यायें कितनी

सस्ती हैं, इसका रसपूर्ण वर्णन कर रहा था। सुना, उन पर थीसिस लिखने वह पुनः भारत जायेगा।"

पाटिल बोले—"मुझे लगा कि मानो सौ-सौ जूते मुझे चौक में सरेआम किसी ने मारे हों! हमारा सीता-सावित्रियों का, सती पूजा का देश ··।"

गोआ के गुडे मिल गये। उनके साथ ही फिलिपिन्स देश की शिक्षा-शास्त्र में रिसर्च करनेवाली एक स्त्री मिली—वह शेक्सपीयर की नायिकाओं पर अंग्रेजी साहित्य में प्रबंध लिख चुकी थी। उसका पति अमेरिकी लेखक-पत्रकार है। पर उसे अमेरिकियों की भग-दड, झक-झक पसंद नहीं। वह कहने लगी कि उसकी मा चीनी और बाप इस्पाहानी थे। लेकिन वह यूरेशियन होकर भी उसका दृष्टिकोण 'पूर्व' का है। उसने कहा—पूर्व और पश्चिम का आत्मिक मेल असभव है। अमेरिकी पुरुष से विवाह करके बारह बरस बाद भी यही उस महिला की उपलब्धि है!

गुडे से गोआ की बात चली। उन्होंने टिपिकल गोवाई मध्यवित्तीय भारतीय का दृष्टिकोण बताया। वे सारी गलती नेहरू और उनके परिवार की बताते है।

मैंने कहा—आजकल भारतीयों में एक नये तरह का भाग्यवाद आ गया है। पहले जब कोई कठिनाई आती थी तो भगवान पर उसकी जिम्मेदारी डाल देते थे। अब जितनी भी बुराई हो—अलाय-बलाय 'नेहरूवंश' पर! अच्छाई के लिए हम खुद हैं ही बुराई-बुराई सब सरकार की।

चलने लगे तो मैंने एक फलसफाना वाक्य छोड़ दिया—"मानवी संबंधो में दिक्कत यह है कि जिस किसी चीज की शुरुआत होती है, उसका अन्त भी होता ही है। सबसे अच्छा यह है कि जिसका आदि हो न अन्त हो।"

फिलिपिनो साहित्य प्रेमिका थी। बोली—"न आदि का पता है, न अन्त का, हम सब 'मीनह्वाइल' से ही संतोष कर लेते हैं।"

मैंने कहा—"यही तो गीता का 'व्यक्तमध्यानि भारत' है। मध्य भी

हम पूरा कहां जानते हैं। केवल जितना व्यक्त है उतना ही जानते हैं।'

अमरीकी हंसा और बोला—'हर आदमी यहां 'टीवी' के प्रोग्राम के बीच मे आता है। वह पूरा होने से पहले ही उठकर चल देता है...।"

मैं पुराने अखबार पढ रहा था। विदेशी लोग भारत और चीन की आर्थिक तुलना करते हैं। 'निउ स्टेट्समैन' में शुमांत ने 'भारत के भूखे करोडो' लेख मे बहुत पहले लिखा था—"एफ.ए.ओ.के एस.के.दे ने शुमात से पूछा था—'तुम भारत में प्रजातंत्र चाहते हो या आर्थिक प्रगति?"

क्या इन दोनों मे विरोध है ?

एक रेडियो में काम करने वाली लेखिका से मिलना हुआ। उसने बताया कि हत्या-खून-बलात्कार और अपराध आदि पर उपन्यास लिखने से सभी ज्यादह कमा लेते हों, ऐसी बात नहीं है। सात दिनों मे पचास हजार शब्दो की एक कहानी उसने लिखी है, सो अब तक अप्रकाशित पड़ी है। उसने बताया कि अमुक लेखक इतना अधिक लिखता है कि जैसे रद्दी के तौल से बेचता हो। विपुल लेखन मे भूसा ज्यादह दाने कम होते हैं। जैसे कहावत है कि 'क्या काबुल में गधे नही होते?' वैसे ही' क्या अमेरिका में रद्दी लेखक नही होते हैं?"

मैंने इधर भारत से आई एक पत्रिका मे लम्बी कहानी, धैर्यपूर्वक पढी। एकदम बेकार। कहीं-कहीं कुछ वाक्य अच्छे बन गये हैं। पर कुल मिलाकर प्रभाव एक ऐसे रंगफलक (पैलेट) का है जिसमे सब रंग गड्डमड्ड होकर मटियाले, धुंधले हो गये हों। मार्गारेट पार्टन ने लिखा है—हिंदू जन काले और सफेद मे सोच ही नही सकता। वह सदा भूरे (ग्रे) मे सोचता है।"

इस तरह से सदानंद की डायरी के अंश कितने ही दिये जा सकते थे। पर वह केवल यही दिखाते हैं कि सदानद वहा ज्यादह दिन नही रह पाया। ऊषा को तो एक कालेज मे पढने की अनुमति मिल गई थी। छोटा-मोटा

काम भी मिल गया था। ऊपा को छोड़कर सदानंद पुनः यूरोप के रास्ते होते हुए अकेला भारत लौट आया।

कहीं न कहीं गहरे में उसके मन मे यह पीड़ा थी कि वह बिना जड़ों का, निर्मूल, विच्छिन्न, एक तरह की अमरबेल का-सा जीवन बिता रहा है। फिर उसने यूरोप मे गत महायुद्ध के बाद रेफ्यूजियों के जहां तांते लग गये, और जिन-जिन देशों मे विनाश के बाद पुनर्निर्माण का कार्य भी बड़े पैमाने पर हुआ, वह देखा, और उसके मन मे यह एकाकीपन उसे और भी सालने लगा।

8

ऐसी दशा मे वह वापिस बंबई लौट आया। दिल्ली वह जाना नहीं चाहता था। उसे डर था कि कोई पुराना पहचान वाला ही न मिल जाये। 'एन. आर.' से उसका गुप्त संबंध बराबर चल रहा था, इसलिए उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी। वह समस्या उसे सताती नहीं थी। पर ऊपा भी अमेरिका में छूट गई। नौकरी भी उसने बदल डाली।

सदानंद अब एक मनो-वैज्ञानिक डॉक्टर बनकर बंबई के उपनगर मे रहने लगा। तरह-तरह के नीम पागल और ऐसे ही रोगियों से उसका पाला पड़ा। पुनर्जन्म के कारण पूर्व स्मृतियो के संस्कारों से पीडित कुछ लोग थे। ऐसी ही एक 'केस' मे डॉक्टर सदानंद (अमेरिका से वह एक डिग्री कहीं से जुगाड़ लाया था) और उस नये परिवार के व्यक्तियों की बातचीत यहां दी जा रही है।

"आइये, आइये, डॉक्टर साहब आपकी बड़ी ख्याति सुनी।"

"ख्याति-ख्याति क्या ? यों ही, कुछ सेवा कर लेते हैं।"

"बैठिये।"

"हूं।"

"शीला, जरा डॉक्टर साहब के लिए चाय, काफी, शर्बत लाना— क्या लेंगे आप ?"

"नहीं-नहीं, कुछ भी नहीं। अभी पीकर आ रहा हूं। तकल्लुफ रहने दीजिये।"

"नहीं साहब, मेरी पत्नी बड़ी अच्छी चाय बनाती है। इसी बहाने मुझे भी थोड़ी मिल जाएगी।"

"क्यों आपकी चाय पर भी श्रीमतीजी का कंट्रोल है क्या ?"

"नहीं, वे चाय की विरोधिनी है। उनके विचार से इस पेय से दिमाग में खुश्की बढ़ती है। नींद नहीं आती। भूख मंद हो जाती है, आदि ...आदि।"

"कुछ हद तक उनकी बातें सही है...।"

"आप सिगरेट पियेंगे ?"

"जी नहीं, शुक्रिया।"

"इसके बारे में भी यही सब कहा जाता रहा है। जान पड़ता है कि अपने बुजुर्ग आनंद मात्र के विरोधी थे। मनःशुद्धि के नाम पर और निर्व्यसनता के नाम पर कई कुंठित पुरुष और स्त्रियों का क्रोध जागृत होता था।"

"मैं पुरातन मतवाला व्यक्ति नहीं हूं। पर व्यसनों पर मनुष्य का नियंत्रण या अधिकार रहे तो उत्तम। अन्यथा वह 'दास' बन जायेगा...।"

इतने में शीला चाय की ट्रे आदि लेकर आई। मुख्य विषय पर चर्चा शुरू हुई। अब प्रोफेसर ने कहना शुरू किया—"शीला को वहम हो गया है, कि वह पूर्वजन्म में एक राजकन्या थी, और उसने एक भिक्षुक का अपमान कर दिया, जिसने उसे शाप दे दिया। इसीसे वह बार-बार उसके सपने में आता है और तंग करता है।"

शीला सिहरने लगी। सोफे पर बैठकर आंखें मूंदकर वह अपनी कहानी सुनाने लगी—"एक सफेद काली-चितकबरी दाढ़ी वाला, भगवी कफनी पहने, क्रोधी मुद्रा में, लाल-लाल आंखें दिखानेवाला साधु चीख रहा है—तुम कभी कोई चीज भूल नहीं सकोगी। बचपन से जीवन में

हुई हर छोटी से छोटी बुरी बात बराबर याद आती रहेंगी । तुम इस जन्म में मर जाओगी, अल्प वयस मे—पर अगले जन्म मे भी तुम सुखी कभी नही रह सकोगी।···तुम किस बात पर घमंड कर रही हो राज-कन्ये ! यह रूप ज्यादा दिन नही टिकने वाला है; यह धन यह तो पानी का बुलबुला है । यह प्रतीक्षा और राजमहल का मान, केवल सपना है। नही, नहीं, तुम कभी सुखी नही रहोगी···।"

बड़ी देर तक वह उस साधु की बात बार-बार दोहराती रही। बीच-बीच में भय से थर-थर कांपते हुए, वाणी अवरुद्ध हो जाती, कंठ-स्वर अश्रु-विगलित हो जाता। बड़ी देर बाद वह एकदम अचेत हो गई—निढाल होकर वह सोफे पर औंधी गिर पड़ी। पति ने उसे वहां से उठाकर शय्या पर लिटा दिया ।

डॉ० सदानंद सोचने लगे कि इसका उपाय क्या हो ?

शीला के पति से उसने पूछा—"इसका मन कही ऐसे अन्य मनोरंजक या दिल बहलाने वाली चीजों में अटकाना चाहिए कि वह यह सब दु:स्वप्न भूल जाये···।"

शीला के पति सुरेश ने कहा—"मैंने वह सब करके देखा है। मैं उसे कई फिल्में दिखाने ले गया।हम लोगों ने थियेटर देखे। हम छुट्टियों में पिकनिक पर गये। मैंने उसे कैमरा ला दिया कि वह फोटोग्राफी सीखे। घर मे संगीत के टीचर लगा दिये। पर यह सब व्यर्थ सिद्ध हुआ जब दौरा आता है, वह पूर्ववत हो जाती है ।"

डॉ० सदानंद गंभीर हो गया।

फिर प्रश्न किया—"वह साधु उससे क्या चाहता है ?"

"वह उसके प्राण चाहता है। शीला के मन में यह बात पक्की बैठ गई कि वह जल्दी ही मर जायेगी—उसका दिल बहुत कमजोर हो गया है। वह रात में नीद मे से चौंककर उठ जाती है। रात-रात-भर उसे नीद नही आती।"

डॉ० सदानंद ने कहा—"मैं इसका उपाय करूंगा।"

डॉ० सदानंद शीला और उसके पति से विदा लेकर अपने एक साधु मित्र के पास पहुंचे। साधु का इलाज साधु द्वारा ही हो सकता था।

यह साधु मित्र नाम का साधु था। वह जीवन में कई तरह के बुरे काम कर चुका था। शायद वह 'एन० आर०' की गैंग का एक सदस्य था। उस ढोंगी साधु का नाम था रग्घू। वह अब अपने आपको राघवानंद कहता था। एक छोटी-सी फर्म में बहुत कम तनख्वाह पर वह पहले काम करता था डेढ़ सौ रुपये माहवार पर। प्राइवेट परीक्षाएं देकर बी० ए० हो गया, वहीं उसे पैसे खाने का चस्का लग गया था। हर काम में कमीशन लेता था। धीरे-धीरे वह बढ़ता गया, सफल होता गया। जैसे को वैसे मिल ही जाते हैं।

उसकी किस्मत से एक बार शहर में एक नामी स्वामी जी आये, जिनकी शिष्य-शाखाएं अमेरिका और कैनाडा में थी। उन्होंने इस चतुर और कुशाग्र बुद्धि के व्यक्ति को देखा। और उन्होंने एक चेला मूंड लिया। अब धीरे-धीरे इस साधुगिरी के कुछ टेकनिकल शब्द यह दुष्ट आदमी सीख गया—प्राणायाम, ध्यान, कुंडलिनी, शक्तिपात, नाम-योग इत्यादि और इसने भी अपनी आध्यात्मिक दुकानदारी शुरू कर दी। छोटी-सी जगह उसके पास थी। बाहर पटिया लगा दिया—स्वामी राघवानंद 'प्रणव-विशेषज्ञ'। जितनी रहस्यवादी शब्दावली का प्रयोग करो, उतना ही अच्छा! जनसाधारण तो मूर्ख होते ही है, उन्हें और मूर्ख बनाने वाला चाहिए। इस देश में यह बिना पूंजी का धंधा सबसे अच्छा चलता है।

सदानंद ने राघवानंद को सारा किस्सा सुनाया। राघवानंद ने पूछा—"शीला का पति सुरेश कैसा आदमी है। यानी उसके पास पैसा-वैसा कितना क्या है? कमीशन तगड़ा मिल रहा हो तो हम ही उस सपने वाले भिक्षुक का भौतिक प्रत्यक्ष रूप धारण कर लेते हैं।"

सदानंद ने कहा—"चलो उसके यहां बात कर लेंगे।"

शीला के घर पहुंचते ही साधु को देखकर वह चीख उठी—"अरे, वही बाबा आ गये!"

साधु ने दाढ़ी पर से हाथ फेरा और पूछा—"'वही' से क्या मतलब है?"

शीला—"सपने में उन्हें रोज मैं देखती हूं। वैसी ही भौहें हैं। वैसी

ही चितकबरी दाढ़ी है। वह भगवी कफनी भी वैसी ही पहनते हैं। हाय, अब मैं क्या करूं।" वह सिहरने लगी।

साधु मुस्कराये। बोले—"बहुत अच्छा।"

शीला चुप। घर में बैठे सब लोगों पर सकता। एक अजीब खौफ़ का आलम तारी हो गया। सुरेश भी चुपचाप सिगरेट पीता, नाखून कुतरता एक कोने मे बैठा रहा, नपुंसक की तरह।

साधु ने कमरे मे छाया मौन तोड़ा—"सब लोग यहां से बाहर चले जायें। सिर्फ मैं और सदानंद यहां रहेंगे। मुझे 'पेशंट' से कुछ एकान्त में जरूरी बातें करनी हैं। दरवाजे खिड़की के बाहर कोई कान लगाकर न बैठे। बहुत बुरा होगा, यदि प्रेतात्माओं की इस बातचीत के बीच में कोई मर्त्य आ गया हो। उसी समय वह मर जायेगा।"

अब सब मरने के डर से बाहर हो गये। कमरे में शीला, साधु राघवानंद और सदानंद बचे रहे। जो बातचीत शुरू हुई उसका वैसे तो ऊपर से कोई अर्थ नही लगता था। ऊट-पटांग और ऊलजलूल सी, निरर्थक और विसंगत बातें लगती थी। पर मनोविश्लेषण के जानकार, जो हर मानसिक असाधारणता का अर्थ लगा लेते हैं, उसमें एक गहरा सरोकार किसी किसी चीज से पायेंगे, जहां मन के भीतर कोई कुंठा की घुंडी जमकर बैठ गई थी। मन सदा लापता चीजों की खोज में लगा रहता है, तब तक चीजें घुलकर मिटती चली जाती हैं। साल्वादोर दाली की पिघलती हुई घड़ियो की तरह···एक हिमनदी में आधे टूटे खंभो की तरह···

साधु ने कहा—"मत डरो बच्ची।"

"मैं बच्ची-वच्ची नहीं। मैं सयानी हो गयी हूं। मेरी मां मुझे क्यों पीटती है? मैंने पापा को बाथरूम में नंगा नहाते देखा था···।"

सदानंद—"तब तुम्हारी उम्र क्या थी?"

"मेरी कोई उम्र नहीं। मैं आद्या शक्ति हूं। भैरवी हूं। मैं जन्म से नारी हूं—मृत्यु तक रहूंगी। मैं सती हूं। मैने कोई पाप नही किया है।"

साधु—"तो तुमने उस भिक्षुक को दान क्यों नहीं दिया?"

"वह असंभव चीजें मांगता था?"

सदानंद—"कैसी असभव?"

"आकाश कुसुम गूलर का फूल, सोने का पहाड़, रेगिस्तान में फव्वारा, हमेशा जमा रहने वाला इंद्र धनुष।"

साधु—"तब बारिश हो रही थी ?"

"बिना बादल के बिजली, बिना आकाश के धूप—अधर में देवता नाच रहे थे...।"

सदानंद—"कौन से देवता ?"

"उनका चेहरा नहीं था।"

सदानंद—"फिर भी याद करने की कोशिश करो।"

"उनकी आंखें लाल थी, पड़ौस के चाचा बैजनाथ जैसी। बचपन में उनसे बहुत डरती थी।"

साधु—"क्यों ?"

"वह खूब शराब पीकर धुत्त होकर आते। देर रात नशे में बीवी को खूब पीटते। छोटे-छोटे बच्चे चीखते—हमारी भाभी को मत मारो!"

सदानंद—"कोई मदद करने नहीं आता ?"

"घर में कोई नहीं था। पड़ौस की बुढ़िया आकर दरवाजा पीटती पर उसकी कौन सुनता ?"

साधु—"फिर क्या हुआ ?"

"मैं नहीं बताऊंगी राज-कन्या को पंख उग आये। हंस उसे उड़ाकर पहाड़ के पार किले में ले गया।"

सदानंद—"फिर क्या हुआ ?"

"वही दुष्ट साधु लौटकर आ गया। उसने राजकन्या की दोनों टांगें तोड़ डाली।"

सदानंद—"तो क्या हुआ ? दुनिया में कई लंगड़े हैं। विकलांग हैं। मजे में रहते हैं।"

"नहीं-नहीं वह मां बनना चाहती थी। वह मां नहीं बन सकी। उसकी ममता की डोर टूट गई।"

साधु—"राजकन्या बच्चा गोद ले लेती।"

सदानंद—"तुम अपने पति को चाहती हो ?"

"मैं उसके बिना रह नहीं सकती।"

सदानंद—"वह साधु तुमसे व्याह करना चाहता था ?"

वह चीखी—और बेहोश हो गई।

सदानंद ने कहा,—"साधु राघवानंदजी, अब आप जायें। हम इसका कोई-न-कोई उपाय खोज निकालेंगे।"

9

शीला का और इतिहास जानने पर पता लगा कि उसे बच्चा नहीं हुआ था। कई बार बच्चा होनेवाला होता, पर जल्दी से गिर जाता। या तो उसके शरीर में कोई दोष था, या मन में। डॉक्टरों को दिखाया कि कोई शरीर में कमी तो नहीं थी। पति-पत्नी वैसे स्वस्थ्य थे। कोई भी समस्या न थी। रोग मानसिक ही था।

सदानंद ने अमेरिका में जाकर दुनिया भर की अवांतर बातें सीख ली थीं--उनसे वह लोगों पर रौब गालिब कर सकता था। अच्छी अंग्रेजी बोल लेता था। अच्छे नफासत से कपड़े पहनता था। एक नूर आदमी, दस नूर कपड़ा। और उसमें सौ नूर बातचीत का लफड़ा।

पर भीतर-भीतर डॉ० सदानंद को एकांत बहुत खलता था। अकेला होने पर उसका मन उसको खाने लगता था। बार-बार उसे अपने परिवार की याद आती। सौतेली ही क्यों न हो मां कैसी है, कहां है? और सब रिश्तेदार? आधी आते ही पक्षी भाग नहीं जाते हैं? दरिद्र का भी ऐसा ही होता है। फिर पेड़ पर पत्ते आये कि पक्षी चहचहाने आ जुटते हैं। पैसे वालों के पास लोग हर तरह जमा हो जाते हैं। जहां होंगे कण, वहीं जुटेंगे जन। (असतील शितें, तेथे जमतील भुतें)।

उसे लगा कि इस तरह से अकेले रहने की जिंदगी कोई जिंदगी नहीं।

इसलिए उसने विचार किया कि विज्ञापन देकर विवाह के योग्य

पत्नी या वधू ढूंढ़ी जाये। वह जानता था कि ऐसे विवाह करना खतरों से खाली नहीं। पर विज्ञापन का परिणाम यह हुआ कि पचासों प्रार्थना-पत्र आ गये। उनमें से छांटना भी मुश्किल था। कई लोगों को बुलाया। एक एक से बात की एक भी नहीं जंची।

जीवन इसी तरह दिशाहीन भटकता चल रहा था कि एक दिन उसके चिकित्सालय मे एक युवती आई। सहमी-सहमी, डरी-डरी सी। उसने आकर बताया कि वह शीला की सहेली है, और उसके बारे मे बहुत कुछ बताना चाहती है।

सदानंद ने उसे एकांत कमरे में ले जाकर पूछना चाहा। पर वह कहने लगी—"मैं यह सब क्यों बता दूं? मुझे इसके ऐवज में क्या मिलेगा?"

सदानंद ने कहा—"जैसी जानकारी तुम दोगी उस पर उसके दाम निर्भर होंगे। मैं पहले से कैसे बता दूं? मानो मैं तुम्हें कई हज़ार रुपये कहूं और तुम एकदम कुछ न बताओ, तो?"

वह ज़ोर से हंसने लगी। बोली—"आप भी अजीब आदमी हैं। गुप्त बातें जानने को इतने उत्सुक हैं? पर उसके भी पैसे चाहते हैं? मोल-तोल करते हैं। आप बेकार आदमी हैं।" थोडी देर चुप रहकर वह बोली—"आप गाना सुनोगे?"

सदानंद ने कहा—"क्यों नही?"

निदा फाजली की गजल थी जो उसने गाई:

"जब से करीब हो के चले ज़िंदगी से हम
खुद अपने आईने को लगे अजनबी से हम
कुछ दूर चलके रास्ते सब पर एक से लगे
मिलने गये किसी से मिल आये किसी से हम
अच्छे-बुरे के फर्क ने बस्ती उजाड़ दी
मजबूर हो के मिलने लगे हर किसी से हम
शाइस्ता महफिलों की फिज़ाओ मे जहर था
ज़िंदा बचे हैं ज़ेहन की आवारगी से हम

जंगल मे दूर तक कोई दुश्मन न कोई दोस्त
मानूस हो चले हैं मगर बंबई से हम"

उसकी आवाज़ बहुत ही अच्छी थी। उसमे लोच भी था। दर्द भी था।

थोडी देर दोनों चुप बैठे रहे।

सदानंद ने कहा—"तुम्हारा नाम क्या है?"

"लीला।"

यह नाम शीला से मिलता-जुलता था। यह मेरे पास क्या केवल शीला के बारे मे बताने आई है, या इसका कुछ और गहरा इरादा है? डॉ० सदानंद थोड़ा मन-सन मे सकुच गया।

ऊपर से उसने कहा—"आपका गाने का ढंग बहुत ही अच्छा है। क्या आपने गाना कही सीखा है?"

"हां"

"कहां?"

"मुन्नीजान के कोठे पर।"

"आप और मुन्नीजान का कोठा।" सदानंद को विश्वास नही हुआ।

"क्यों, उसमे क्या बुराई है?"

"अच्छाई-बुराई नहीं। पर ऐसी बात कोई लड़की एकदम एक अपरिचित को बताती नही है।"

वह हंसने लगी। उससे साफ था कि लीला इस मनोचिकित्सक की ही मनोचिकित्सा करने आई है।

हम सब कितने भोले हैं। हम समझते है कि हम सब होशियार हैं। और अपने को औरों की निगाह से छिपा रहे है। पर असल में कोई किसी से छिपा हुआ नही है। सबको सबका पता है। सिर्फ हम एक विराट् धोखा-धड़ी के शिकार हैं। हम सब आत्म-वंचक हैं। अपने-आपको औरों से बेहतर मानते रहते हैं।

"तो लीला, क्या मुन्नीजान के यहां जाना तुमने स्वेच्छा से चुना? वहा तुम क्यों गईं?"

"यह सब मैं क्यो बताऊं? पहले यह बताइये कि आप इसके बदले

में मुझे क्या देंगे ?"

"क्या ज्ञान की कोई कीमत है ?"

"आप अपना मनोरोगों का ज्ञान बेचते रहते हैं। क्या यह पाप नहीं है ?"

"पाप छिपाना है। वैसे अच्छे-बुरे कर्मों का फल तो आदमी यहीं, इसी जन्म में, दूसरे ही क्षण पा लेता है।"

"क्या आप इस बारे मे इतने आश्वस्त हैं ?"

डॉ० सदानंद ने एक किताब अलमारी से उठाई और लीला को उसने एक भदत्तशूर का श्लोक सुनाया :

पापं समाचरति वीतघृणो जघन्यः
प्राप्यापद सघृण एव तु मध्यबुद्धिः।
प्राणात्ययेऽपि न तु साधुजनः सुवृत्तं
वेला समुद्र इव लंघयितु समर्थः ॥

और अर्थ भी बताया—"निर्दय नीच पुरुष सदा पापाचार मे ही प्रवृत्त रहता है, मध्यम श्रेणी का व्यक्ति आपत्ति पड़ने पर कुछ सहृदय हो जाता है किन्तु साधु पुरुष— जिस प्रकार समुद्र अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता उसी प्रकार प्राण-संकट आने पर भी अपना सदाचार नहीं छोड़ते।"

लीला ने सीधे प्रश्न किया—"क्या आप अपने को साधु पुरुष समझते हैं ? आप वह निर्दय नीच पुरुष है जो पापी और पुण्यवान के बीच में झूल रहे हैं। देखो सदानंद, मुझसे कुछ छिपाओ मत, मैं ऊषा से सब जान चुकी हूं वह यहां भारत मे आ गई है। और तुम पर तलाक़ का मुकद्दमा करने जा रही है।"

अब डॉ० सदानद की पहली फ़िक्र यह हुई कि इस स्थिति से कैसे भागा जाये ? वह 'एच० आर०' की सहायता लेने गया। उसने एक कोड नंबर बताया हुआ था। उसपर उसने फोन किया। और उधर से जानकार आदमी ने सूचना दी। अभी दो दिन 'बॉस' बाहर है। फिर 'कांटैक्ट' करना।

दो दिन सदानद के बहुत बुरे बीते। वह यह सोचता था कि ऊषा उधर अमरीका में मज़े मे है। और अब उसकी जान संकट में है। कोई

चिता नहीं है। न आगे पाग, न पीछे पगहा। वह मुक्ताचारी है। जो चाहे सो करेगा। उसे कोई नहीं जानता कि उसका भूत क्या है।

यही मनुष्य की दूसरी बड़ी गहरी आत्मप्रवचना है। कोई भी मनुष्य अपने 'भूत' से पूरी तरह मुक्त नहीं हो सकता है, न हुआ है। जब तक शरीर है, उसके निर्माण करनेवाले पिता (निश्चित न हो तो भी) माता है। उसमें परंपरित संस्कारों के बीज हैं। वही तो दूसरे शब्दों में पूर्वजन्म का दान है। सदानंद यथा नाम जो सदा आनंद में रहना चाहता है। पुराने सब दुःखों को भूलकर 'गुम-शुदा' बने रहने में उसे सुख है।

पर अपने-आप से कहां भागेगा ?

उसके भीतर कुछ है जो उसे कुरेद-कुरेद कर, कोंच-कोचकर जगाता, उकसाता, पहचानता रहा होता है—तू अरविंद मलहोत्रा है।

तू अरविंद मलहोत्रा है।

तू अरविंद मलहोत्रा है।

तू न देबी सेन है, न सदानंद वालावलकर, तू और कुछ बन···तू यहां से भाग जा···तुझे इस पृथ्वी पर कहीं चैन नहीं है, जब तक तेरा असली पता, असली आदमी लगा नहीं लेगा।

लेकिन क्या यहां से भाग जाना इतना आसान है ? ठीक है, किराया दिया हुआ है। और कोई बंधन या चिंता नहीं है। पैसा भी पास में काफी है। लेकिन वह सर्वशक्तिमान, सबको ऊपर से भीतर-बाहर देखते रहने वाला ईश्वर नहीं—दादा 'एच० आर०' उसकी गिरफ्त से कैसे बचा जायेगा ?

सदानंद ने सोचा कि इसके पहले कि ऊषा से जाकर लीला कुछ कहे और वह कोर्ट में मुकद्दमा दायर करे और वह समन्स उसके फ्लैट तक आयें, वह वहां से उसी तरह भाग निकले—दो जोड़ी कपड़े, स्लीपिंग बैग और बैंक अकाउंट कल पूरा खाली करा ले। कैश कितना साथ में रख सकता है। किसी दूसरे ही नाम से ट्रैवलर्स चैक बनवा ले।

यह सब उसने दूसरे ही दिन किया। और रात की गाड़ी से वह पूरब चला गया। सीधे उड़ीसा से कटक जा पहुंचा। और एक होटल में अपना नाम महादेव शर्मा लिखवाकर रहने लगा। इसी नाम से उसने ट्रैवेलर्स

चैक बनवाये थे—बंबई में जहां उसका मनोरोग का क्लिनिक था, उससे बहुत दूर, उलटी दिशा में, एक उपनगरीय बैंक से ।

अब महादेव शर्मा की एक नयी जिंदगी शुरू होती है । एक सस्ते से होटल मे वह रहता है । बाजार से कुछ रंग, कुछ ब्रुश, कुछ कैनवास खरीद-कर लाया है, और दाढ़ी उसने मुड़वा दी है । मूछ रख ली है, चीनी ढंग की होंठों के दोनों ओर लटकती-सी । होटल मालिक को उसने अपने-आपको एक आर्टिस्ट बताया है । और स्थायी ठिकाना एक झूठा ही बिहार का भागलपुर का पता बता दिया है । होटल मालिक से उसकी बातचीत के हिस्से :

"तो आप मिस्टर शर्मा, कितना दिन इहां रहेगा ?"

"आप दस दिन तो रहने ही देंगे । यह एडवांस किराया ले लीजिये । मैं फिर समुद्रतट पर जाऊंगा । मेरी इच्छा पुरी से गोपालपुर जाने की है । मैं समुद्र के अलग-अलग 'मूड्स' के कई चित्र बनाना चाहता हूं ।"

"उनका आप क्या करेंगे ?"

"कलकत्ता मे उनका एक्ज़ीबिशन होगा ।"

"समुद्र में ऐसा क्या ब्यूटी आपको लगता है ?"

"समुद्र में सब तरह के जीव हैं । तरगें है । सब नदियां मिलती हैं । असल मे मनुष्य का सबसे पहला सहचर वही है । वही से सारा जीवन पैदा हुआ ।"

"वाह, यह अच्छी हौबी है ।"

महादेव शर्मा ने अब एक अच्छी-सी पब्लिक लाइब्रेरी में जाकर समुद्र और महासागर के बारे मे पढ़ना शुरू कर दिया । समुद्र मे से ही तो अमृत-मंथन हुआ था । इसीलिए श्री के अर्थ हैं दोनों अमृत और विष । श्री-श्री इसीलिए एक साथ हमारे बड़े नामों के पीछे लिखते हैं । उसने संस्कृत में समुद्र के बारे में कितनी-कितनी मनोरंजक बातें पढ़ीं और अपनी डायरी मे जमा कर ली । उनमें से कुछ इसलिए कि लापता आदमी की यह अपने को भुलाने की यह लंबी कोशिश किस-किस तरह से व्यक्त होती रही ।

समुद्र दो मर्यादाओं का पालन करता है । एक तो वह तट का उल्लंघन नहीं करता । दूसरे वह किसी भी प्यासे को एक बूंद भी नहीं देता । क्या

विचित्र बात है, इतना बड़ा जल का पारावार, पर न किसी की तृषा बुझा पाता है, न अपनी वेला से एक कदम आगे बढ पाता है।

समुद्र को 'नदीन' भी कहते हैं। जिसकी एक बूंद भी किसी याचक के मुंह में नही गिरती उसे 'न दीन' या धनी—रत्नाकर या महाब्धि कहना क्या सचमुच विरोधाभास नही है ? ऐसा धनी भी किस काम का जो गरीब का कुछ भी भला न कर सके।

समुद्र के पेट मे वड़वानल है। वह अपने अंतर की आग को ही नहीं बुझा पाता। उसका पानी किस काम का है ?

समुद्र ने देवताओं को अमृत दिया और उन्हें विमुक्त कर दिया। वह मुक्तागार बना। सब उसी का ध्यान रखते है। छोटे-मोटे गर्मी मे सूख जानेवाले तालाबो को कौन पूछता है ? जबकि सचाई यह है कि आडे वक्त वही छोटे पोखर और नदी-नाले प्यासे की प्यास बुझाने मे काम आते है, न कि यह बडा भारी द्रवमय लवण का आगार !

समुद्र के कारण ही शंकर 'शशि' शेखर बना, विष्णु लक्ष्मीकांत, और देवता 'अमर' कहलाये। तीनो समुद्र से निकले; मंथन के बाद—चंद्रमा, लक्ष्मी और अमृत।

हे खारे जल ! तेरे ऐसे गुण के कारण कोई तेरे पास नही आता, ऐसी स्थिति मे जल-जन्तुओं के लिए ऐसे भीषणाकार भवर क्यों रखते हो ?

बड़े आदमी समुद्र की तरह होते है। उन्हें कोई कुछ नही कहता। इतनी मूल्यवान मणियो को तो नीचे दबा रखा है और ऊपर तिनके तैरा रहा है, फेन और शिपाएं।

समुद्र का लक्षण यह है कि उसके जलबिंदु से (वे खारे होने से) इतनी आशा भी व्यर्थ है कि जीभ जले और प्यास दुगुनी न लगे।

समुद्र के भीतर मणियां हैं, रत्न हैं, पर्वत हैं, अनेक जीव हैं, दुग्ध (क्षीरसागर) हैं, मोतियों के ढेर हैं, बालू हैं, प्रवाल द्वीप हैं, मूंगे की लताएं हैं, सेवार है, जल है, और क्या कहा जाये उसका नाम भी रत्नाकर है। इस तरह दूर से दृष्टि को और कानो को सुखदाई (नाम) भी है, किन्तु पास से प्यास भी नही बुझती।

चाहे देवता और दानवो के सैन्य समूह से मथा जाये, चाहे मेघ और

नदियों से भरा जाये अथवा बड़वानल की आग से सोखा जाये समुद्र न तो क्षुब्ध होता है न दुबला पड़ता है।

ऐ समुद्र ! कभी समाप्त न होनेवाली और निरन्तर चलनेवाली तुम्हारी इन लहरों का क्या प्रयोजन है ? रुको, यह नदियों का जल है, इसमें तुम्हारा अपना क्या है ? जरा-सा भी जल तुम्हारा अपना नहीं।

यहां रूखे, खारे पानी के सिवा क्या है, कहीं सर्प न लिपट जायें उस डर से स्वस्थचित्त होकर इसमे नहा भी नहीं सकते, बड़ी-बड़ी मछलियां तुम्हें निगल न जाये इस डर मे नाव भी नही चला सकते, ऐसे मरुस्थल मे क्यों व्यर्थ दौड़ रहे हो ? उसने अपने हृदय में जो मणि छिपा रखे हैं, वह इतनी आसानी से देने वाला नही है।

समुद्र कहता है कि मेरा जल तो शाप के कारण खारा हुआ है। मैंने महोदार होकर याचक देवताओं को अमृत दिया। लक्ष्मी का आश्रय महा-मणि कौस्तुभ, सबको शीतलता देनेवाला चंद्र, और इच्छित फल देनेवाला कल्पद्रुम और कामधेनु मैंने संसार को दी, इन सब गुणों को तृणयोग्य समझकर ये लोग केवल मेरे दोष ही देखते हैं।

यदि ऊबो नहीं और सावधान होकर क्षण-भर मेरी बात सुनो तो हे समुद्र, तुमसे मैं कुछ पूछता हू, उसका निश्चय करके उत्तर दो कि निराशा की ग्लानि से अत्यन्त उग्र अर्थात् लम्बी सास भरते हुए प्यासे पथिक से जो तुम देखे जाते हो वह इस बड़वानल के दाह से कितना अधिक दाहक है ?

विष्णु को लक्ष्मी, शकर को अभिनव चद्र, इंद्र को भी उच्चैः श्रवा घोड़ा दिया, किन्तु इन सबकी क्या गिनती है जबकि प्यासे अगस्त्य को तुमने अपनी देह तक दे डाली। अतः त्रिभुवन में सागर से बढ़कर दूसरा बोधिसत्त्व और कौन हो सकता है ?

वायु के वेग के कारण यदि समुद्र रत्नों से चमचमाती हुई लहरिया उठा-उठाकर अपना किनारा बंद कर दे तो वह याचकों के विपरीत भाग्य का दोष है और इसमें उस दाता के दान भाव का थोड़ा भी दोष नही।

हे समुद्रतल की मूगे की लताओं और मोती के सीपों की पंक्तियों, तुम समुद्र के लिए और समुद्र तुम्हारे लिए कल्याणकारी हो। तुम्हें ही वे मुबारक हों। मैंने तो समुद्र का समस्त फल इतने से ही प्राप्त कर लिया

कि उसके भयानक जल-जन्तुओं, अजस्र महासर्पों और मकरों-महामत्स्यों से फाड़ नही डाला गया।

चारों ओर की मीठे जल की नदियों से जल ले-लेकर, यानी उनसे छीनकर इस दुष्ट समुद्र ने क्या अर्जित किया ? उस सारे पानी को खारा बना डाला, वड़वाग्नि मे झोंक दिया और पाताल के पेट मे डाल दिया। सागर में इतना अथाह जल, पर मानव, प्यासा का प्यासा !

यह सब सस्कृत कवियों की लिखी सूक्तियां हैं। कितने हज़ार बरसो पहले की बातें। इसके लिखनेवाले और रचनेवाले कौन हैं, यह भी कोई नही जानता। ऐसा सुन्दर विचारों और कल्पनाओ से भरा यह संस्कृत वाङ्मय, उसके कठिन व्याकरण के डर से हमने प्रदूषित कर डाला। उसके रत्नो को भुला दिया।

उसे एक आधुनिक भारतीय कवि ने 'समुद्रभंगी' कहा है, चूंकि वह सारा कूड़ा-करकट किनारे पर लाकर जमा कर देता है।

और अब हम ही यह शिकायत करते हैं कि समुद्र से मिलनेवाली स्वास्थ्यकारक हवा, वह 'ओज़ोन' कही कम तो नही हो रही है ?

इस तरह से रोज वह अपनी डायरी में कई-कई बातें लिखता रहता। सब चिंताओं के मूल मे उसे अपनी पहचान छिपाने की चिंता प्रधान थी।

एक दिन वह समुद्र-किनारे एक धीवर से मित्रता कर बैठा। उसने पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है ?"

धीवर बोला—"जगन्नाथ।"

वह हंसा और बोला—"नाम इतना बड़ा, पर खाली हाथ ?"

"हमारे मां-बाप को बच्चा नही होता था, इसीलिए यह नाम रख दिया। हम क्या करें ? हम तो अनाथ के अनाथ हैं। बचपन मे बाप-मां मर गये। तब से यही नाव पर काम कर रहे हैं। किनारे की झोपड़ी मे रहते हैं। पेट पाल रहे हैं, किसी तरह।"

"और कोई नहीं है तुम्हारे घर में ?"

"हां, एक बेटी है। मेरी बीवी तो कभी की मर गई। एक और बच्चा हुआ और उसके जन्म के साथ मां और बच्चा दोनों गये।"

"समुद्र से तुम्हारी आमदनी कितनी हो जाती होगी।"

"अजी बाबूजी, क्या पूछो। मेरा पेट किसी तरह पल जाता है। पर यह मीना है, जो बाजार तक मछली ले जाती है। कुछ कमाई करके लाती है। अब बड़ी हो गई है न? बाप को बेटी के ब्याह की चिंता रहती है। पता नहीं कैसा पति मिले? हमारे धीवरों में तो सब बदमाश लड़के हैं। वे इस लड़की को भगा ले जाना चाहते हैं। मेरी वही अंधे की लकड़ी है। वही चली जाये, तो बाद में क्या होगा?"

महादेव शर्मा ने जेब से कुछ रुपये निकाले। पूछा—"पास में कुछ पीने को मिल जायेगा? प्यास बहुत लगी है।"

"ताड़ी की दुकान है।"

"चलो, तुम वहां तक ले चलो। तुम भी पीना, हम भी चखेंगे।" महादेव के मन में उन समुद्र जीवियों के जीवन की झांकी पाने की जिज्ञासा थी। उसे क्या पता था कि ऐसा काड वहां हो जायेगा।

वह पहुंचा, तो उस झोंपड़ीनुमा ताड़ी की दुकान में दो गाहकों में गाली-गुफ्ता चल रही थी। वह जल्दी ही मारा-मारी में परिणत हो गई। जब मामला हाथापाई पर आ पहुंचा, तो दुकानदार ने उन दोनों पियक्कड़ों को छुड़ाया।

इतने में महादेव और जगन्नाथ वहां आ पहुंचे। पूछा—"क्यों लड़ाई कर रहे हैं।"

दुकानदार—"यह रोज का ही है बाबूजी। एक कहता है, दूसरे ने उससे पैसे उधार लिये। दूसरा कहता है वह कभी का लौटा चुका है। कोई कर्जा बाकी नहीं है।"

दोनों लड़ने वाले दुकान से बाहर जा चुके थे।

दुकानदार ने दोनों को गालियां दीं और कहा—"दोनों झूठे और मक्कार हैं। मुफ्त पीते भी हैं और ऊपर से रौब भी जमाते हैं!"

महादेव और जगन्नाथ एक बेंच पर बैठ गये। और उन्होंने देसी बोतल मंगवाई। जगन्नाथ 'युग-युग के प्यासे' की तरह से पीता रहा और धीरे-धीरे अंड-बंड बड़बड़ाने लगा। ओड़िया भाषा में, जो महादेव नहीं समझ रहा था। थोड़ी देर बाद वह बेंच पर से उठकर नाचने लगा, उन्मत्तों की तरह गाने लगा।

इतने में एक बड़ी-बडी आंखो वाली, काली-सांवली लडकी दूकान के बाहर से ही चिल्लाती आ पहुंची—"बाबू, अरे बाबू, मेरे बाप को आपने क्या कर दिया? मैं इसे बराबर पैसा नही देती। पीकर यह माताल (मतवाला) हो जाता है। आपने मेरे बाप की जान संकट में डाल दी।"

महादेव समझ गया कि यह उस धीवर की बेटी मीना ही है।

वह जगन्नाथ को बाहर ले गया। दुकानदार को पैसे दे दिये। और सहारा देकर, उसे लड़खडाते कदमों मे झलते देख, महादेव ने उस अपरिचित लडकी से कहा, "मैं झोंपड़ी तक इसे पहुचा दूगा। तुमसे यह संभलेगा? रास्ते में ही तुम्हें मार-पीटकर पड़ा रहेगा औंधे मुंह। यह होश में नही है।"

लड़की कुछ बोली नही। वह उपकार लेना नही भी चाहती थी। पर और चारा भी क्या था?

यही से महादेव और मीना की घनिष्ठता बढ़ती चली गई।

11

ऊषा जब अमेरिका से लौटी तो वह एक बदली हुई स्त्री बनकर। सेठ मफतलालजी की वह दब्बू लड़की, जिसे बाप ने बिना कुछ समझे-बूझे वालावलकर से ब्याह दिया था, वैसी हिस्टीरिया पीडित प्रौढ़ कुमारिका वह नहीं रही थी। उसने दुनिया देखी थी। देखी ही नही सुनी, सूंघी और चखी भी थी। दोनों हाथों से उस दुनिया के उसने हाथ दबाये थे, उसके हाथों में हाथ डालकर वह 'स्क्वेअर डांस' भी कर चुकी थी। अब वह आसानी से पुरुषों के बहकावे मे आनेवाली लडकी नहीं रह गयी थी। आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र, आज़ाद ख्याल, अपने मन की मलका, वह मुक्ता महिला (लिबरेटेड वूमन) बन चुकी थी।

उसके मनमे एक ही विचार था—बदला लेने का। यह आदमी अपने-आपको क्या समझता है ? सदानंद सदा आनंद से नहीं रह सकेगा।

इसके लिए पहली बात जो उसके मन में उठी—वह थी सदानंद के 'बॉस' 'एच० आर०' को किसी तरह मिलने की। *कुछ परिश्रम के बाद उसे* उस व्यक्ति का सुराग मिल गया। और एक जगह वह 'एच० आर०' से मिली। उनकी बातचीत के अंश :

"अरे आप ? ऊषाजी ? मैं समझा फोन पर अंग्रेज़ी उच्चारण से कि कोई अमेरिका में बसी भारतीय प्रौढ़ महिला है। आप देखते-देखते इतनी जल्दी इतनी वयस्का कैसे हो गईं ?"

"आपने जिस आदमी मे मेरा परिचय कराया, और हमे विदेश में एक साथ भेजा, वह तो धोखेबाज़ निकला।"

"ओह आप वालावलकर की बात कर रही हैं ? उसका अब हमारी गैंग से कोई संबंध नहीं।"

"वह हो न हो, मेरा *विश्वास है कि आपको उसका वर्तमान पता* अवश्य पता होगा।"

"वह लापता हो चुका।"

"कोई भी आदमी जो आपके संपर्क में एक बार आ चुका है। वह आपकी नजर से ओझल कैसे हो सकता है ?"

एच० आर० हंसा—"तो इतना ताकतवर तुम हमें मानती हो।"

"मानने की क्या बात है, आप हो ही।"

"यह तुम क्यों मानती हो ?"

"आज दुनिया में पैसा सब से बड़ी शक्ति है। आप उसे चाहे जितना, चाहें जब, सब कानून-नियम तोडकर ले आं सकते हो। और क्या चाहिए?"

"सबूत ?"

"अमेरिका, स्विटजरलैंड, सारे फ्री पोर्ट्स—बैरूत, अदन, सिंगापुर हौंगकौंग—कहां आपके एजंट नहीं हैं ? 'एच० आर०' दो अक्षर कहना ही काफी है। जहां जो जानकार लोग हैं। वे इस नाम के आगे सिर झुकाते हैं। थरथर कांपते हैं। चाहे जितना पैसा जब चाहिए तब जहां चाहिए वहां लेकर सामने रख देते हैं।"

एच० आर० फिर बोला —"हां, यह सच है।"

"फिर बताइये कि वह सदानंद कहा भाग गया ? आपकी चंगुल में आने पर कोई इतनी आसानी से भाग नही सकता। आपने ही उसे किसी गुप्त काम पर भेजा होगा। आप बताना नहीं चाहते।"

इतने मे एच० आर० के एक चमचे ने अनुमान फेंका—"बॉस, वह मूलत: उत्तर का रहने वाला है। उधर लौटकर जा नही सकता। दक्षिण से आया था और वह बंबई और समुद्र किनारे पर रहने का आदी हो गया था। अब जरूर वह हिंदुस्तान के या तो मध्य भाग में कही छिपा होगा या पूरब की ओर गया होगा—।"

"इतने बड़े मुल्क में उसे खोज निकालना समुद्र मे से एक बूद को खोजने की तरह है।"

"मैं क्या करूं ? मैं उसके बिना मर जाऊंगी। मुझे उससे बदला लेना है। आप जो कहोगे वह काम करने को मैं तैयार हूं।" उसने गिड़गिड़ाते हुए कहा।

एच० आर० को लगा कि यह घर बैठे जैसे लक्ष्मी आ गई। इस स्त्री की शिक्षा भी काफी है। अकेली है। चतुर है। क्यों न इसका उपयोग महत्त्वपूर्ण राजनैतिक कामों मे लिया जाये। उसने पैंतरा बदलकर कहा—"हां, हम पता करते हैं पूर्व भारत मे हमारे 'कांटैक्टों' से—कहीं सदानंद वालावलकर की हुलिया, नही तो अंगूठे के निशान वाला कोई व्यक्ति मिल जाये तो पता लगाते हैं। मेरा कयास है कि वह अब बड़े शहर मे नही होगा। वहां उसके पहचाने जाने का डर बहुत है। इसलिए वह ऐसी किसी अज्ञात जगह में होगा, जहां पुलिस के रेकार्डों में उसकी छाया या छवि पहुंच नही पाई हो। पूर्व मे आसाम, बंगाल और उड़ीसा तीन ही तो प्रदेश हैं। आसाम मे वह जायेगा नही। उसके विचार इतने सुधरे हुए और सुविधापसंद हैं कि वह कष्ट मे नही जायेगा। वह बंगाल मे या उड़ीसा मे होगा। उसने कामधंधा बदल लिया होगा। वह बिजिनेस कर सकता नही। स्कूल-कालेज में कोई नौकरी उसे मिल सकती नहीं। वह बी० ए० में पढ़ता था। डिग्री उसके पास है नही। बिना ट्रेनिंग या प्रमाण-पत्र के उसे नौकरी कौन देगा ?"

"फिर वह क्या कर रहा होगा ?"

ऊषा ने कहा—"वह पत्रकार बन सकता है। उसे लिखने का शौक था। डायरियां उसने अनेक रंगी थी। बाद में कई नष्ट भी कर डाली।"

"क्या वह और कोई कला जानता था ?"

"फोटोग्राफी करता था।"

"पर कैमरा उसके पास नही था। वह खरीदे ऐसी स्थिति में नहीं था।"

"फिर ?"

"देखिये, अधीर मत हूजिये। हम कोशिश करते हैं।"

'एच० आर०' के एक सहकारी ने सुझाया —"सदानंद चित्रकार बन सकता है।"

"चित्रकारी के भी अनेक रूप हैं। क्या वह उसका व्यवसाय कर सकता है ?"

"क्यों नहीं ? वह चित्रकला सीखा है। ऐसा उसकी डायरी से पता लगता है।"

"अच्छा ऊषा, आज से पद्रह दिन बाद हम यही मिलेंगे। तब तक शायद सदानंद का कोई सुराग मिल जाये।"

ऊषा आशा लेकर चली गई।

12

ओड़िसा तंत्र की भी भूमि थी। प्राचीन काल से वहां दक्षिणाचार और वामाचार दोनो प्रचलित रहे हैं। दोनों मिल गये मध्यकाल मे। संस्कृत मे कहावत थी, "षट्कर्णोभिद्यते मंत्रः" (मंत्र चार कानो से आगे छह् कानो तक गया कि नष्ट हो गया)। ओड़िया भाषा मे भी कहावत है,

"षड कान मंत्र भेद।"

मीना केवल धीवर जगन्नाथ की बेटी नहीं थी। वह तंत्र-मंत्र की जानकार थी। यह जब महादेव ने सुना तो उसकी उत्सुकता और बढ़ गई। मीना बे पढ़ी-लिखी लड़की, उसकी इसमे क्या पैठ हो सकती थी भला? तंत्र थे ही साधारण जनों के लिए—अ-पंडितों के लिए।

पुरी में जगन्नाथ भैरव रूप में प्रतिष्ठित हैं। 'विमला भैरवी यत्र जगन्नाथस्तु भैरवः।' मीना की बातें समझने के लिए महादेव ने किताबों में से पढ़ना शुरू किया—ओड़िसा मे तंत्र और मंत्र का इतिहास। उसे पता चला कि उड़ीसा का तंत्राचल तीन भागों में विभक्त है : सुवर्णरेखा से ऋषिकुल्या तक विरजामंडल। उसे 'महोदधि तंत्र भाग' कहते हैं। ऋषिकुल्या से संपूर्ण दक्षिण उड़ीसा 'शाबरी तन्त्र भाग' कहलाता है। पश्चिम उड़ीसा, जहा महादेव इस समय था, "बौद्ध तंत्र भाग' था। इस बौद्ध तंत्र भाग में विख्यात राजा इंद्रभूति और उसकी बहन लक्ष्मीकंरा ने अद्भुत तांत्रिक उपलब्धियां हासिल की। ऐसा मिथक वहां प्रचलित था। जगन्नाथ पीठ पुरी में ही अक्षोम्य, भैरव ने अपनी साधना द्वारा भगवती तारा के दर्शन किये। दस महाविद्याओं मे द्वितीय महाविद्या हैं—देवी तारा। उनका अंगराग नीला होने से उनको नील-सरस्वती के नाम से भी जाना गया। इसीलिए उड़ीसा को नील-शैल या नीलगिरि कहते हैं।

महान् बौद्ध तांत्रिक इंद्रभूति ने उडीसा के प्रसिद्ध तांत्रिक कबलपाद और राजगोपाल के पुत्र अनंगवज्र से तंत्र-शिक्षा ली। इंद्रभूति संबलपुर के राजा थे। इंद्रभूति ने बौद्ध-परिवार की कल्पना की :

वज्रसत्त्व यानी अनन्त शून्य का सारतत्त्व

प्रज्ञापारमिता यानी आध्यात्मिक अपौरुषेय ज्ञान

इस दम्पति से पैदा हुए श्वेतांग, वैरोचन, नीलाभ-अक्षोम्य, पीताभ रत्नसभव, अरुणाभ अमिताभ और श्यामांग अमोघसिद्धि! वैरोचन की शक्ति वज्राधात्वीश्वरी और अक्षोम्य की शक्ति लोचना की कल्पना इंद्रभूति ने की। इंद्रभूति की उपास्या देवी थी वज्रवाराही और कुरुकुल्या। 'साधना-माला' ग्रंथ से ज्ञात होता है कि इन देवियो का अस्तित्व

आ रे नोई जे न अ बान्क
पोखरी समतूल
कुजी लहरी रे भासी जे जाउछी
आदिन लाऊ फूल
आदिन लाऊ फूल न अे तो न अे जाऊ
कलाई फूल केडेत सुढल
जवाब देई जाऊ

(हे मंगला माता, नदी की गहराई असीम है और उस पर पत्थर का बेड़ा तैराया गया है। तुम्हारी कृपा से यह बेड़ा आप ही शीघ्र तैरने लगेगा। झील की तरह समतल है। नदी का मार्ग टेढा-मेढा है । असामयिक लौकी का फूल नदी में बहा जाता है। इसे नदी में बहने दो। मेरे प्रिय, करेले के फूल को 'हां' कहने दो।)

धीरे-धीरे मीना महादेव को उन सब गुप्त स्थानों पर ले गई जहां पूजा की गुह्य तांत्रिक विधियां चलती थी। महादेव भी उसे प्रचुर दक्षिणा देता। और यह ज्ञान प्राप्ति का सदा आनंद देने वाला मार्ग चलता गया, चलता गया। मीना अपने बाप को ताड़ी की एक बोतल थमा देती और वह चुपचाप झोपडी में पड़ा रहता।

यह एक अजीब तरह का नया रिश्ता विकसित होता जा रहा था।

·

13

प्रशात, यानी अरविंद मल्होत्रा के सगे भाई ने, एक बार बंबई में अपने खोये हुए भाई को देखा, और उसका पीछा किया और जाना कि वह अमेरिका जा रहा है। उसके बाद उसे वह भूला नहीं था। दो साल बाद वह पुनः उसी उधेड़-बुन में लगा रहा कि अपने खोये हुए भाई को

वापिस ले आयेगा। अब की बार उसने सदानंद वालावलकर के मनोरोग-चिकित्सालय का पता लगाया, पर वह नहीं लगा। परंतु उसने उसकी पत्नी रूपा का पता कर लिया। वह अमेरिका से लौट आई है और अपने खोये हुए पति को खोज रही है। दोनों एक ही लापता आदमी की तलाश में थे।

इस बात का पता उसे एक मनोरंजक ढंग से लगा।

एक दिन प्रशांत बबई में एक होटल के बाहर के हिस्से में बैठा था कि उसने देखा, एक स्त्री बार-बार उसकी ओर देख रही है। वह स्त्री बहुत स्मार्ट थी। उसके बाल कटे हुए थे। उसने स्लीवलेस ब्लाउज पहना था, नीचे जीन्स थे। काफी मेकअप किया हुआ था। वह पहले समझा ऐसी ही कोई नये ढंग की औरत होगी। जो शाम के वक्त होटलों के आस-पास मडराती रहती है। पर काफी की दो चुस्कियों के बाद उसने फिर देखा कि वही स्त्री पुन: उसकी ओर एकटक देख ही नहीं रही है बल्कि उसके पास आ रही है, तो वह चौंक उठा। उसने अपने मन को शांत किया और सोचा, 'चलो, देखें क्या माजरा है।'

वह अपरिचित महिला बड़े करीब आकर उसकी आंखों मे घूरती हुई बोली—"सदानंद !"

"मेरा नाम सदानंद नहीं।"

"मुझे धोखा नहीं दे सकते तुम। दाढी तुमने साफ कर दी है पर इसका मतलब तुम वह नहीं हो यह ठीक नहीं। बाल ठीक वैसे ही हैं। तुम सदानंद ही हो।"

"नहीं, नहीं, नहीं।"

वह स्त्री ज़ोर-ज़ोर से बोलने लगी।

प्रशांत ने उसे पास बैठाया और पूछा—"कौन सदानंद ?"

"मेरा स्वामी।"

"वह क्या खो गया है ?"

"वह मुझे धोखा देकर अमेरिका ले गया। मेरा सब पैसा लेकर भारत लौट आया…।"

"मैंने अमेरिका तो दूर, अदन तक भी प्रवास नहीं किया है।"

"क्यों बनते हो ? वह बेरूत और ज़्यूरिख और...।"

"आपको कुछ 'हैल्यूसिनेशन' (आभास) हो रहा है, मैडम ! ऐसा हो जाता है। हम जिस चीज़ की खोज में लगे रहते हैं, वही हमे सब ओर दिखाई देने लग जाती है। कंस को जल-स्थल, काष्ठ, पाषाण सब जगह कृष्ण ही कृष्ण नजर आता था···"

यह धार्मिक तर्क भी उस महिला पर जब कारगर नही हुआ। तब प्रशांत ने उससे एक-एक कर बात पूछना शुरू किया। पहले अपना परिचय दिया—"मेरा नाम है प्रशांत मल्होत्रा। मैं दिल्ली का रहने वाला हूं। पांच साल से मेरा भाई अरविंद घर से लापता है। वह मेरा सगा भाई है। मैं एक कंपनी का एजेंट हूं और मुझे भारत-भर में घूमना पडता है। एक बार गोआ मे एक होटल में मैंने उसे देखा था। उसका बहुत पीछा भी किया था। तब उसका नाम देवी सेन था। मैंने उसका बहुत पीछा किया। पता लगा कि वह *अमेरिका भाग गया है*, किसी लडकी को लेकर···।"

"वह अभागी लडकी मैं ही हूं। पर तुम वह नही हो। इसका क्या सबूत है ?"

प्रशांत हंसा और उसने बाया गाल रोशनी की ओर कर दिया। पूछा—"उसके बायें गाल पर ठुड्डी के पास तिल था। वही उसकी निशानी है। दाढ़ी रख लेता तो वह छिप जाता था। मेरे चेहरे पर वह तिल नही है।"

अब ऊपा की जान में जान आई। आंखों मे आंसू भरकर वह कहने लगी—"माफ कीजीये, मैं धोखा खा गई। एक-सा चेहरा, एक-सी आंखें, एक-सा बाल रखने का अंदाज़, एक-सा कद, नाक-नक्श—तुम सदानंद के सगे भाई हो, और यहां मिल जाओगे, इसका पता ही नही था। तुम मेरे साथ चलो। हम मिलकर कुछ योजना बनाते हैं। तुम्हें अपना खोया हुआ भाई चाहिए,। मुझे मेरा खोया हुआ स्वामी···।"

"पर इतनी बड़ी दुनिया में; और दुनिया को छोड दें फिर भी हिंदुस्तान में कैसे खोजा जाये अरविंद को···?"

"तुम उसे अरविंद कहते हो, वह तो सदानद है।"

"नहीं उसका असली नाम अरविंद मल्होत्रा है। वह बी० ए० में पढता था, तभी घर से भाग निकला है। वह गोआ के किसी बैंक में काम करता था। तब उसकी मैत्री किसी लड़की से हुई…।"

"मैत्री नहीं। मेरी उससे शादी तै हुई। मेरे पिता ने उसे शिकागो जाने का हवाई जहाज का टिकिट दिया। उसने वहां विदेश यात्रा में कैसे कैसे आश्वासन दिये। मैंने जीवन में दूसरी बार धोखा खाया। सारी पुरुष जाति ही इस तरह से स्त्री को धोखा देने वाली होती है।"

"सारी पुरुष जाति को क्यों बदनाम करती हो? स्त्रियां क्या कम धोखा देने वाली होती हैं? यह सब अपने-अपने संयोग की बात है।"

"मैं अबकी बार सदानंद मिले तो—।"

"सदानंद मत कहो, अरविंद कहो।"

"पता नही उस दुष्ट ने अब क्या नाम रख लिया होगा। वह मिल जाये तो उसे अगर मैं जेल की हवा न खाने को बाध्य करूं तो…।"

"आप जेल की हवा किस तरह से उसे खिलायेंगी?"

"एक तो वह नाम बदलते घूमता है। यह एक गुनाह है। दूसरे वह बिना डिग्री के या सही क्वालिफिकेशन के मनोरोग-चिकित्सक बना फिरता है। उस नाम से दुकान चलाता है। यह दूसरी धोखाधड़ी हुई। तीसरे, उसने मुझसे रजिस्टर्ड शादी करके, वह अमेरिका में मेरी सारी संपत्ति लेकर एक दिन भारत भाग आया। कितने-कितने गुनाह किये हैं उसने?"

"यह सब तो तुम जानती हो। पर वह भलामानस तो अब तक दूसरे ही रूप में और कहीं विचार रहा होगा। पता नहीं उसने और कोई शादी ही कर ली हो।"

"इस सारे छल-कपट और धोखाधड़ी में मेरे दिल के मरीज पिता मर गये। मुझे मानसिक कष्ट कितना हुआ। सबका हरजाना उसे देना होगा।"

"यदि वह कहे कि आपसे वह खुश नहीं है। और तलाक देना चाहता है।"

"तलाक यों ही नही दिया जा सकता। कारण दिखाना होगा…।"

"कानून यहां भी पुरुष के हक में है। तीन साल वह पत्नी से अलग रहे और सीधे 'सेपेरेशन' ले सकता है।"

"पर उसे मुझे 'एलिमनी' (दंड स्वरूप पत्नी को दी जाने वाली रकम) देनी होगी। मैं ऐसे नहीं छोड़ूंगी उसे···"

"पर पहले वह आपकी चंगुल में आये तब है न ?"

"एक काम करते हैं। तुम हिंदुस्तान भर अपनी एजेंसी के सिलसिले में घूमते ही हो। बड़े-बड़े शहरों के बड़े अखबारों में उसका फोटो और वर्णन छापते हैं। लापता व्यक्ति को ला देने वालों को बड़ा इनाम। कुछ भी राशि लिख देते हैं। पचास हज़ार···।"

"बस, आदमी की कीमत सिर्फ पचास हज़ार ? अजी, एक-एक हीरा और एक पिक कोट इससे ज्यादा दाम वाला होता है।"

"पुलिस को इत्तिला देते हैं।"

"पुलिस ऐसे मामलों में दिलचस्पी नहीं लेती, जब तक उसमें उनका भी कोई लाभ न हो।"

"आप तो मेरी ही बात को काट देते हैं। निराश कर देते हैं। आपको अपने भाई को खोज निकालना है या नहीं ?"

"क्यों नहीं ? उसके मिलने से पिताजी कितने खुश होंगे।"

"तो क्यों नहीं, तुम और हम मिलकर उसकी खोज करते हैं।"

अभी तक ऊषा ने यह नहीं बताया था कि उसका 'एच० आर०' की गैंग से संबंध है, और उसका अनुमान है कि शायद वह देश के पूर्वी अंचल में कहीं है।

प्रशांत ने पूछा—"तुम्हारा क्या अंदाज है कि वह कहाँ होगा ?"

ऊषा—"मेरा ख्याल है कि वह भारत के पूर्वांचल में होगा।"

प्रशांत—"क्यों ?"

"उसे समुद्र-तट बहुत पसंद है। वह केरल में था। गोआ में था। समुद्र से लगाव के कारण बंबई में था। विदेश में भी वह समुद्रतटीय देशों और स्थानों में बहुत घूमा करता था। उसे लगता था कि वह गये जन्म में कोई समुद्र पर घूमते रहनेवाला नाविक था। जैसे कि मनुष्य इतनी सारी भीड़ में, जन-कोलाहल में खो जाता है, वैसे ही वह कहता था—हर मनुष्य एक बूंद है जो सागर में मिल जाने को व्याकुल है। कभी कभी वह अचल की बात करता था। कहीं न कहीं उसके भीतर एक

कोमल कलाकार भी छिपा हुआ था। पर इस निर्दयी दुनिया में भटकते-भटकते उसने उस कोमल अंकुर को उखाड़ फेंकने की कोशिश की, उसका गला घोंट डाला था।"

"पर वह जो भीतर होता है, इतनी आसानी से मरता नहीं। वही मूल स्वभाव है। वही मनुष्य के भीतर का आदिम मनुष्य है। वही प्रथम पुरुष नहीं प्रथम पशु है। वही शिशु बनता है। उसी पर सस्कारों के पुट चढ़ते हैं। वह अपने आपको भुलाकर इधर-उधर उसी अपनेपन को खोजता फिरता है। वह वस्तुतः अपना सही अता-पता नहीं जानता। वह नाम बदलता रहता है, वेश बदलता रहता है। वह अलग-अलग पार्ट अदा करता है। कभी बेटा है, कभी स्वामी है, कभी यायावर है, कभी गृह-हारा है। पर वह एक ही है। वह अपनी छाया से नहीं भाग सकता।"

"तुम तो ठीक उसी की तरह बोल रहे हो। कभी-कभी 'मूड' में आता तो बड़ी ऊची दार्शनिक और कवियों जैसी बातें कहता था।"

"तो अब भारत के पूर्व का समुद्र-तट तो बहुत दूर-दूर तक फैला हुआ है। विशाखापट्टनम् से पुरी और गोपालपुर और कितने-कितने नगर महानगर उस तट पर है। कहां खोजेंगे उसे ?"

"देखते है एक से भले दो। दोनों मिलकर क्या कर सकते है।"

ऊषा ने प्रशात का अता-पता ले लिया। प्रशांत ने ऊषा का और दोनों बार-बार मिल जुलकर कोई युक्ति खोजने लगे कि लापता आदमी को खोज निकालें।

14

एच० आर० की गैंग के लोग देशभर में फैले हुए थे। उड़ीसा के समुद्र-तट के लोगों को सावधान कर दिया। उन्हीं मे एक चतुर व्यक्ति थे

राव।

राव नाम से ही तेलुगु था। पर वह ओडिया, बंगाली भाषाएं अच्छी तरह जानता था। दिखाता नही था कि वह सब जानता है। वह इस गैंग से जुडने से पहले आसाम में रहता था और उसे आदिवासियों की संस्कृति मे बहुत रुचि थी। उडीसा अंचल के आदिवासियो के बारे में उसने बहुत पढा था। और नोट्स जमा करता था। विशेषत. उनके अंध-विश्वासों, भूत-प्रेतों के बारे मे, उनकी मान्यताओ और नरबलि आदि के बारे मे। वह धर्म से ईसाई था।

उसने जो जाना था उसका सारांश यों था—

उडीसा के आदिवासियो को कांधेड (कंध और संपर्कित जाति), तथा मेलानिड (मुडा-संपर्कित जाति) इन दो हिस्सो मे बाटा जाता है। उडीसा के उत्तर मे कंध, परजा, अमनात्य, भेतड़ा, कोया आदि और ओरांव, जुआग, भुइयां सब कांधेड है। कोरापुट के डुडुआ पास के पर्वत पर बंडा परजा, उत्तर क्षेत्र के मुडारी बुला जाति के बीरहोर, गुगुपुर और पारला, खेमुडियाल के लांजिया और साओरा दूसरी तरह के आदिवासी हैं।

कांधेड संप्रदाय के आदिवासी बिल्कुल हिंदू जैसी मान्यताएं रखते हैं। पुनर्जन्म मे उनका विश्वास है। जन्म होते ही 'कालिसी' डायन यह बता देती है कि कौन-से मृत पूर्वपुरुष की आत्मा इस बच्चे मे आई है। मेलनिड़ लोग पुर्नजन्म नही मानते। वे मानते हैं कि मरने के बाद आदमी भूत हो जायेगा। कांधेड़, मुर्दों को जलाते हैं, मेलानिड़ दफ़नाते हैं।

कांधेड़ भूमि की पूजा करते हैं। वे भूमि-पूजा मे बलि ज़रूर चढाते हैं। आषाढ मास की पूजा मे जिंदा सुअर का मुंह काटकर ज़मीन पर खून डालकर 'गोंईसारी' देवता की पूजा की जाती है। यह मेलानिड़ भी करते हैं। दोनों जातियों में अविवाहित लड़के और अविवाहित लड़कियों के सोने मे सम्मिलित घर—धांडा और धाडी के घर होते हैं। ये घर केवल सोने के लिए नही, वहां क्लब की तरह साथ-साथ संगीत-रोमांस सब चलता है। युवक वाद्य बजायेगा: *एकतारा, डुगडुगी, डफ, बंसरी या खंजड़ी*। युवक किसी युवती का नाम गीत मे गूंथकर गाना गायेगा। युवती

उसका उत्तर देगी। रात-रातभर यह संगीतमय प्रश्नोत्तर चलता रहता है। यदि इसके बीच युवती युवक पर आसक्त हो जाये, तो दोनो का विवाह कर दिया जाता है।

काधेड़ो के गोत्रनाम अनेक हैं: किसी का जन्तु, किसी का चिड़िया, किसी का पेड़, किसी का धान। भगवान ऊपर आकाश मे रहता है। नाम है 'धनु'। नीचे देवी है धरित्री। मेलानिड जातियो मे भगवान का प्रतीक है सूर्य। मुंडारी भाषा में वह 'सिंग' है। दक्षिण की सओरा (शावर) समाज मे वह 'जनालो' है। एक लकड़ी का टुकड़ा लेते हैं। उसे छीलते है। उसके हाथ नहीं होते। उसके सिर पर पगड़ी बांधते हैं, ऊपर पत्तों का छाता रखते हैं। काधेडों मे गंड जाति के दो प्रधान देवता हैं—जंघा और लिंगा। वहां नरबलि देने की प्रथा थी। कंधो में यह प्रथा सन 1855 तक जारी थी।

यजुर्वेद की तैत्तरीय सहिता मे 'पुरुषमेध' है···

शतपथ ब्राह्मण, अलस्तं, भशांखायन, बौधायन सूत्र, कात्यायन में नरबलि के कई उल्लेख हैं।

कंधों में सीता 'चितागुडि ठकुराणी' है। वह शस्यदात्री देवी है। कंधो में निरामिष पूजा दी जाती है। सओरा मुर्गा चढाते हैं। सभी आदिवासियो के ग्राम देवता, गृह देवता होते हैं। उनके अलग-अलग नाम हैं। जिनसे मृत्यु का डर है, उन सबकी पूजा होती है—चेचक रोग की, बाघ की। बाहर के शोषक बाबू लोगों को भी देव बना दिया है 'बाबू देवता'। सेओरा उसे पूजते हैं।

आचार्य विनोबा भावे ने कंध प्रदेश की पद-यात्रा की तो उनकी तस्वीर की भी कंध पूजा करने लगे। सामान्य पूजा-विधि के अनुसार तस्वीर के सामने मुर्गे के खून का नैवेद्य चढाकर कोटिका कंध कहते हैं—

'विनबाबा, खा, खा'

सारी पूजाएं आदिवासी स्वयं करते हैं। उनमें ब्राह्मण पुजारी की आवश्यकता नहीं होती। पूजा करने के लिए जाति के एक या दो व्यक्ति अलग-अलग होते हैं। कंधों में *'जानि'* पुजारी है, *'दिशारि'* पुजारी और

भविष्यवक्ता दोनों होता है।...

राव ईसाई थे। उन्हें जगन्नाथ की पूजा और ईसाई धर्म की मान्यताओं में कई समानताएं दिखाई दी।

जगन्नाथ सारे भारतवर्ष में एकमात्र लकड़ी का देवता (दारु-विग्रह) है। बाइबिल में ससार-वृक्ष की उपासना प्रसिद्ध है। लावारेस मेटाफिज़िका' ग्रंथ में 'प्लेट-इनकोमीक्स' नामक विशाल संसार-वृक्ष का चित्र है।'पुराने क़रार' (टेस्टामेंट) में 'ट्री आफ लाइफ़' और 'आइ हैव गिवन यू एवरी हर्ब वेअरिंग सीड' की चर्चा है। गीता में 'ऊर्ध्वमूलमध: शाखमश्वत्थंप्राहुरव्ययम्' कहा है। उसके छंद ही पत्ते हैं।' 'वृक्षों मे मैं पीपल हूं' स्वयं भगवान ने कहा है।

1522 ईस्वी के एक उत्कीर्ण चित्र मे ईसामसीह को वृक्ष के रूप मे दिखाया गया है। उसका नाम 'लिग्नम फिची' है। कई विद्वानों का मत है कि यह वृक्ष ही सबका त्राण करने वाला सलीब या 'क्रास' है।

वेदकालीन प्रणव-तंत्र में त्रिमूर्ति है। बौद्धों के त्रिरत्न हैं। ईसाई धर्म मे 'पुराने क़रार' के 35वें अध्याय में त्रित्त्व के बारे में जेकब कहता है—मिस्र से जो जीव मेरे साथ आये वे 'तीन कुड़ी (बीस) और छह' थे। जगन्नाथ में तीन मूर्तिया हैं। पुराना क़रार कहता है—'पुरुषोत्तम ने जीवात्मा अपनी ही प्रतिमा में बनाया, 'एक पुरुष, एक नारी'—यानी एक दोनों को बनाने वाला, और स्त्री-पुरुष—तीन मूर्तियां हुई। यही तो क्षर-अक्षर और उत्तम तत्त्व है, गीता के।

जगन्नाथ की आंखें वर्तुलाकार क्यों हैं? यह वर्तुलाकार हर गिरिजाघर में है। यह 'वृत्त' जगन्नाथ की आंखें ही नही, उदर, मंडल, यत्र, पताका सबमें है। जगन्नाथ की दो बड़ी-बड़ी वर्तुलाकार आंखें उडिया साहित्य में 'चकाडोला' कहलाती हैं। 'डिक्शनरी ऑफ सिबल्स' नामक पाश्चात्य विद्वान् की पुस्तक मे इन तीन वर्तुलाकारों के अर्थ दिये हैं। चीन में भी स्वर्ग का प्रतीक ऐसी मंडलाकार मूर्ति है। वे तीन अर्थ यो है—

● बिन्दु—यूनिटी आफ दि ओरिजिन।

○ वृत्त—इन्फिनिटी आफ दि यूनिवर्स।

⊙ केन्द्र—सेंटर आफ इन्फिनिटी।

सन्त और अनन्त का कैसा मेल है यह! जब दोनों एक होता है तभी तो दृष्टि बन जाती है।

जगन्नाथ को गुडिचा (रथयात्रा) के समय, काष्ठ से बनी वेष्ठनी, जो 'क्रास' की तरह होती है, पहनाई जाती है। उसे 'सेना पट्टा' कहते हैं। मंदिर के प्राचीनतम 'शबर' (शिकारी) सामन्तों द्वारा वह पहनाया जाता है। वह सेनापट्टा पहन लेने के बाद छुआछूत का भाव दूर हो जाता है। यह सेनापट्टा 'क्रॉस' के आकार का है, जिसे शबर आदिवासी पवित्र और उपादेय मानते हैं। यही स्वस्तिक का पहला रूप है।

स्कंदपुराण के जगन्नाथ-पीठ वर्णन और वैष्णव दर्शन के 'त्रिपाद विभूति वैकुंठ' वर्णन का जेरुसलम के वर्णन से अद्‌भुत साम्य है। 'स्टडीज इन कंपेरेटिव रिलीजन' (आटम् 1971) में एक निबंध में इसे सचित्र प्रमाणित किया गया है।

उन्नीसवीं सदी के अंत में साधु सुंदरदास उत्कल के एक साधु हुए। उनका मठ पुरी में था। उस मठ में ईसामसीह और कृष्ण की मूर्तियों की पूजा वे साथ-साथ करते थे। क्रेष्टो और ख्रीष्ट का नाम-साम्य भी था। अब यह मठ पुरी की मरिचिकोट गली मे है।

राव यह सब जानने के लिए पुरी पहुंचा।

तभी 'एच० आर०' का संदेश और उसके साथ डा० सदानंद वालावलकर का फोटो आ पहुंचा। इस आदमी को किसी तरह खोजकर निकालना है। केवल इतना संकेत मिला कि वह समुद्र किनारे कहीं है।

समुद्र के किनारे के कई होटल खोजे। एक जगह जाकर यह पता चला कि एक आदमी वहा आया था, जो समुद्र के चित्र बनाता था। कई हफ्ते रहा। फिर वहां से चला गया।

"क्या चित्र भी साथ ले गया?"

"हां।"

"उसका हुलिया कैसा था?"

"अब क्या बतावें साहब, यही दुबला-पतला, छरहरा आदमी रहा। समुद्र किनारे बहुत घूमता था।"

राव ने फोटो दिखाया।

"नही साहब, दाढ़ी तो उसकी बिल्कुल नही थी।"

"और कोई खास बात?"

"वह रात को जागता था। और कुछ लिखता रहता था।"

"पर आप उसकी इतनी खोज-खबर क्यों रख रहे हैं?"

"हम सी० आई० डी० के आदमी हैं और उस आदमी को पकड़ना जरूरी है।"

इतने में होटल के एक नौकर ने खबर दी—"वह बाबू तो बड़ा रंगीन था। उसने उस जगन्नाथ धीवर की बेटी मीना को पटाया उसी के साथ वह पता नहीं कहां भाग गया?"

एक और सुराग मिला।

राव जगन्नाथ धीवर की झोंपडी में पहुंचा। एक नया शहरी बाबू आता देखकर वह आगबबूला हो गया। "ये सब शहर के गुंडे-लफंगे, कहां-कहां से चले आते हैं। देखिये, मेरी सोने जैसी बेटी को ही ले गया।"

"वह भी तो राजी होगी, तभी तो दोनों गये।"

"मैंने मीना को कुछ नही किया था। मैं उसे मारता नही था। मैंने कभी उसे भला-बुरा नही कहा। गाली नही दी। उसकी मां मर गई—उसके बाद वही तो घर चलाती थी। और क्या कहूं।"

"जब वे दोनों गये उस दिन तुम क्या कर रहे थे?"

"मैं मछली पकड़ने गया था। शाम को थका-मांदा आया। मीना ने मुझे दो बोतलें ताडी की दी। मैंने पूछा भी—आज इतनी खुश-खुश नजर आ रही हो। बोली—बाबू दे गया था, आपके लिए।"

"किस खुशी मे?"

"उसे कोई काम मिल गया है। उसने मुझे भी यह लाकिट दिया चांदी का।"

"वाह! तू तो पूरी दुलहिन लगने लगी। पर अपनी मरजाद छोड़कर

ऊंची जात में ब्याह न करना। जिंदगी खराब होगी। ऊंची जातवाले का कोई भरोसा नहीं होता, समझी?

"मीना सिर्फ हंसी और चली गई। उसने उस दिन अपनी अच्छी-वाली साड़ी पहनी थी।

"रात को मैं देर से पीकर लौटा तो देखा घर खुला पड़ा है। बेटी नहीं है। मैंने सोचा—चांदनी रात है—कहीं सहेलियों के साथ नाच-गान में मस्त होगी। मैं सो गया।

"सवेरे उठा, तो देखा मीना नहीं लौटी। जरूर उस बदमाश बाबू ने उस पर जादू कर दिया होगा। अब मैं जिंदा रहकर क्या करूंगा? मुझे यह बड़ा समुन्दर क्यों नहीं ले जाता? कोई बड़ी मछली मुझे अपना खाद्य बना ले। मैंने अपने हाथों अपनी मीना को लुटा दिया। मेरे जैसा पापी कौन होगा?"

राव ने पूछा—"मान लो, वह बाबू उसे न ले गया हो—क्योंकि वह ऐसी एक धीवरिन को अपने साथ क्यों ले जायेगा? तो वह और कहां होगी?"

जगन्नाथ ने कहा—"वह बाबा के पास गई होगी।"

राव—"यह बाबा कौन है?"

जगन्नाथ—"बड़ा तांत्रिक है। उसी के मठ में वह चली गई होगी।"

राव ने अता-पता लिया और जंगल में आत्म-रक्षा के लिए एक पिस्तौल रखकर वह उस अघोरी बाबा के डेरे पर पहुंचा।

15

विचित्र जगह थी। और विचित्र उसकी आस-पास की वनराजि। घना जंगल था। वहां तक पहुंचने का मार्ग भी बहुत बीहड़ था। कोई

बस्ती आसपास नहीं। यह आदमी यहां अकेले गुफा में कैसे रहता होगा ? क्या उसे जंगली जानवरों का डर नहीं था ? पास मे ही श्मशान था और वह नदी किनारे था।

वहां दो-चार डोमों की बस्ती थी। एक मंदिर भी था काली का। पुजारी रहता था। ज्यादातर दूर के गांव के असामाजिक तत्वों का वह अड्डा था। पुजारी खूब गांजा पीता। वहां लोग जुआ खेलते रहते और सब तरह के लूटपाट के किस्से चलते रहते। सुनसान रास्ते के पीपल के नीचे ही अक्सर हत्याएं हो जाती। लोग नाम किसी पिशाच का ले लेते।

ऐसी बस्ती मे मीना क्या करने आई होगी ? क्यो आई होगी ?

जरूर इसके पीछे कोई रहस्य है—राव ने सोचा।

टार्च और जरूरी खाने की चीजें, वाटरबॉटल सब लेकर वह चला था। पर रात कैसे गुजारेगा इसकी बात उसने सोची नही थी। वहां तक पहुंचते-पहुंचते शाम हो आई थी।

गांव में एक सरायनुमा जगह थी। वही उसने डेरा डाल दिया। कुछ पेट-पूजा की और उस एकांत स्थान मे एक दीवार की ओट मे लेटा रहा। उसने तै किया था कि सवेरे वहां उस तान्त्रिक अघोरी बाबा के पास पहुंचेगा। तब उसकी पूजा भी हो जाती है। बाबा खुशी के मिजाज मे होते हैं। दो-चार चेले भी आ जुटते हैं।

वहां पहुंचने पर उसे अपेक्षित लड़की वहां मिल गई। वह मीना ही थी। मब उसी नाम से उसे पुकार रहे थे। बाबा की वह चेलिन बन चुकी थी।

पर मुख्य जिस आदमी को खोजने वहां इतने कष्ट सहन करके आया था, वह लापता था। सदानंद कहां था ?

राव को पता नही था कि सदानंद महादेव बन चुका था। एकदम उसके बारे में पूछना भी ठीक नही था।

बाबा ने पूछा—"क्या चिंता है तेरी ?"

राव—"एक खोये हुए आदमी के बारे मे पूछने आया हूं।"

बाबा—"तुम पुलिस के आदमी हो ?"

राव—"नही।"

बाबा—"फिर क्यों पूछते हो ?"

राव—"जानने के लिए।"

बाबा—"जानने के लिए दुनिया में और बहुत-सी बातें हैं।"

राव—"आप तो त्रिकालदर्शी हैं। बता दीजिये कि वह किस दिशा में है ?"

बाबा—"फिर वही प्रश्न ? ऐसे सवालों के हम जवाब नही देते।"

राव—"क्या मैं मीना भैरवी से पूछ सकता हूं ?"

बाबा (अट्टहास कर)—"पूछ ! पूछकर देख ले…।"

राव—"मीना शक्ती ! कहां है वह आदमी जो तुम्हारे पिता को रोज एक बोतल शराब दे आता था।"

मीना—"मैं नही जानती। ऐसा कोई आदमी नहीं था।"

राव—"क्या तुम्हारे पिता झूठ बोलते हैं ?"

मीना—"पीने के बाद आदमी कुछ भी बोल सकता है। उसे होश तो नही रहता।"

राव ने सोचा, ऐसे काम नही चलेगा। वह आया और वैसे ही चुप-चाप लौट गया। 'एच० आर०' को उसने सूचना दी—कुछ-कुछ सुराग लगा है। पर लापता अभी लापता है।

एच० आर० ने ऊपा को सूचना दी। ऊपा ने प्रशात को। कुछ दिनो बाद ऊपा और प्रशांत बाबा अघोरनाथ और मीना भैरवी के दर्शनार्थ आ पहुंचे। राव उनके साथ जान-बूझकर नही आया था।

दोनों ने आकर बाबा को प्रणाम किया। बाबा वैसे ही पहेलियां बुझाने वाली भाषा मे बोलते थे।

बाबा—"बच्चा, क्यों आए हो ?"

प्रशात—"दर्शन के लिए।"

बाबा—"हो गये दर्शन, भाग जाओ ?"

ऊपा—"भागकर किधर जायें ?"

बाबा—"क्यो—आठो दिशा खुली पडी हैं। रोक कहा है ?"

प्रशांत—"रुकावट भीतर है।"

बाबा—"वह क्या है ?"

ऊपा—"पैर नही उठते।"

बाबा—"क्या पैरों में कोई रोग है?"

ऊपा—"मन का सवाल है।"

बाबा—"मत उठो। बैठे रहो। बाबा और कुछ नही कहेगा।"

थोड़ी देर मौन।

मीना भैरवी आ गई। कुछ और भक्त आ गए। उन्हें लाल फूल दिये। वही बाबा का प्रसाद था।

मीना—"तुम कौन हो? कुछ पहचाने से लगते हो। पहले तुम्हें कहीं देखा है।"

प्रशांत—"वह मेरा भाई होगा। उसका मेरा चेहरा एक जैसा है।"

मीना—"उसने तो नही बताया कि उसका कोई भाई है। तुम झूठ बोलते हो।"

प्रशात—"कभी-कभी आदमी जान-बूझकर भी तो झूठ बोलता है।"

मीना—"वह झूठा नहीं था।"

प्रशांत—"वह क्या करता था?"

मीना—"वह समुन्दर देखता रहता और चित्र बनाता रहता था।"

ऊपा—"क्या उसने तुम्हारा भी चित्र बनाया?"

मीना—"हिश्त! कैसी बात करती हो? मैं समुद्र थोड़े ही हूं।"

प्रशात ने ऊपा की ओर देखकर कहा—"समुद्र और नारी में बहुत-सी समानताएं हैं। दोनों अपनी मर्यादा नही उलांघते। दोनों के हृदय के भीतर पता नही कितने आंसू मोती बनते रहते हैं, कितना हाहाकार है…।"

ऊपा ने हंसी मे कहा—"यहां आपके सामने दो-दो समुद्र है।"

प्रशांत—"अच्छा, मीना भैरवी आप बताइये कि वह समुद्र के चित्र बनाने वाला किधर चला गया।"

मीना—"मैं क्या जानू। एक बस आई, उसमें उसने सामान रखा। धूल उडाती वह चली गई।"

ऊषा—"उसने बताया नहीं, कहां जा रहा है।"

मीना—"मैंने पूछा होता तो वह बताता। मैंने तो सिर्फ रुक जाने को कहा था। वह नहीं रुका।"

ऊषा—"ऐसी क्या जल्दी थी ?"

मीना—"वह बोला था कि मेरा काम बाबा तक तुझे पहुंचा देना था। वह पूरा हो गया। अब आगे का रास्ता तेरा अलग, मेरा अलग।"

प्रशांत—"मीना, तुझे अपने बाप की याद नहीं आती ?"

मीना—"आती है। वह मुझे मारता-पीटता था। मैं कभी वहां सुखी नहीं रही।"

ऊषा—"क्या वह आदमी जिसके साथ यहां तक आई, तुझसे शादी नहीं करना चाहता था।"

मीना—"कैसी बात करती हो, बहन ! वह अपनी जाति में शादी करेगा। हम लोगों के साथ उसका क्या मेल ?"

प्रशांत—"क्यों वह तेरे साथ प्रेम नहीं करता था ?"

मीना—"प्रेम अलग बात है। शादी अलग बात है।"

ऊषा ने कहा—यह आदिवासी अनपढ़ लड़की भी कितनी दूर तक सोचती और जानती है। वह इतना भी नहीं समझ पाई।

थोड़ी देर बाद बाबा से बातें हुई। प्रशांत ने पूछा—"बाबाजी, आप इस घोर जंगल में क्यों रहते हैं ?"

बाबा—"तुम्हारा क्या लेते हैं, भाई ! हम चाहे जहां रहें। हम लोगों के लिए तुम्हारे शहर ही जंगल जैसे हैं।"

प्रशांत—"सो कैसे ?"

बाबा—"वहां आदमी का मुखौटा पहने कैसे-कैसे बाघ, शेर, चीते, बन-शूकर घूमते फिरते हैं। यहां कम से कम जो कुछ है, वह अन्दर-बाहर साफ है। जो हमारे मित्र हैं, मित्र हैं। जो शत्रु हैं, शत्रु। मामला बिलकुल 'खड़ा और खुला खेल फरुखाबादी' है।"

ऊषा—"क्या इस मीना का अपने बाप को छोड़कर भाग आना अच्छा है ?"

बाबा—"तुम भी अपने बाप को छोड़कर विलायत गई तो क्या अच्छा किया ?"

ऊषा—"मैं तो अच्छे के लिए ही गई थी।"

बाबा—"हर आदमी यही समझता है और अपने आपको समझाता रहता है कि जो कुछ वह करता है अच्छे के लिए ही करता है। पर आदमी के मामले में कोई अच्छाई पूरी अच्छाई नही होती, न कोई बुराई पूरी बुराई। सब मिला-जुला मामला है। वही जहर है, जान लेता है। दवा के भी काम मे आता है, जिंदगी दे देता है—बुराई को मारकर। आदमी का हर काम ऐसा ही है।"

ऊषा—"क्या प्रेम भी ?"

बाबा—"हां, प्रेम भी।"

ऊषा—"सो कैसे ?"

बाबा—"देखो, वह आदमी जिसकी खोज मे तुम लोग यहां तक आये हो, और जिसे मैं नहीं जानता, वह मीना से प्यार न करता तो वह इस जंगल तक क्यों आता—उसे यहां तक क्यों पहुंचाता ? और उसके बाद इस तरह बिना किसी आशा के लौट क्यों जाता।"

प्रशात—"यह उसने अच्छा नही किया।"

बाबा—"क्योकि तुम्हें उसका पता चाहिए। वह घर से भागा—शायद अच्छे के ही लिए। मीना के बाप ने उस पर आशा लगाये रखी। वह पैसे कमा के लाये और उसे शराब पीने को छूट दे दे। यह बुरा किया। हर काम के अच्छे-बुरे दोनों नतीजे हो सकते हैं। आपको मेरा पूर्व-जीवन मालूम है ? मैंने कौन-कौन से डाके नही डाले, या बदफैल नही किये। पर अब ? मैं समझता हूं जो छूट गया, सो छूट गया। वही अच्छा हुआ। अब मीना से मुझे कोई आशा नहीं। वह अपने मन से आई है। सेवा करती है। भैरवी बन गई। बनी रहे। जिस दिन उसे फिर मीना बनना हो, बन जाये। लौट जाये। हमने बांधकर किसी को थोडे ही रखा है।"

ऊषा—"इस तरह समाज नहीं चल सकता। हर इन्सान का दूसरे से कुछ लगाव, कुछ बंधन तो होता ही है।"

बाबा—"यह हमारी खामखयाली है। अन्त समय कोई किसी के

काम नहीं आता। सारे बंधन क्षणेक के है। आज हैं, कल नही है। सारे सांसारिक मोहमाया के संबंध स्वार्थ के है। किसी को मरते हुए देखकर दूसरा कभी अपने आप मरा है उसके लिए—फिर चाहे जितना निकट का बंधन हो। हमारे गुरु कहते थे—संबंध सिर्फ उस ऊपर वाले एक से सच्चा है। वाकी तो सब मक्कारी है। दिल को बहलाने का ख्याल अच्छा है।"

इस दार्शनिक चर्चा का कोई अन्त नहीं होता। पर वहां जंगल में रहने का कोई इन्तजाम नही था। प्रशांत और ऊषा वहां से चल पड़े।

लापता भाई और स्वामी की तलाश में वे चल पड़े। कोई सुराग नही मिल रहा था। महादेव नाम और वह चित्र खीचता था, इतनी जानकारी काफी नहीं थी। अब तक तो उसने और नाम रख लिया होगा। और चित्र कही वेच दिये होगे, या फेंक दिये होगे।

क्या फायदा है इस तरह आवारा बनकर घूमने-फिरने में ? कही कोई बंधन नही। कही कोई जिम्मेवारी नही। क्या यह भी कोई जिंदगी है ? प्रशात और ऊषा यों सोचते थे। और उन्हें इस अंधी दौड़ में, हर गली एक बंद गली नजर आ रही थी।

इतने में वे उडीसा के उस समुद्र-तट के गांव में राव से मिले।

उसने खुशी से कहा—पता "लग गया है। अरविंद कलकत्ता में है।

प्रशांत और ऊषा ने पूछा—"यह कैसे पता लगा ?"

राव—"यह सब मत पूछिये। एच० आर० के हाथ-पैर बहुत लंबे-चौड़े हैं। वह अपराधी को दूर-दूर तक सजा दे सकते हैं तो इस भगोड़े आदमी को खोज निकालना कौन-सा मुश्किल काम है !"

कलकत्ते में कालीघाट के करीब एक गली। भक्तों का मेला। आ गयी, आ गयीं—माताजी आ गयी।

"कौन माताजी ?"

"वही जयादेवी। काली के अनन्य उपासक महात्मा दुर्गादास की चेली।"

एक भक्त—"दुर्गादासजी की उम्र दो सौ बरस से कम नहीं है।"

दूसरा भक्त—"मैंने स्वयं देखा है' मुर्शिदाबाद के पास महाश्मशान के पास पंचमुंडी स्थान पर उनका निवास है, अद्‌भुत अलौकिक चमत्कारी शक्ति है उनमें।"

तीसरा भक्त—"मेरी मनोकामना पूर्ण करो माई जी !"

चौथा—"बस अबकी बार सट्टे में हमारा नंबर लग जाये।"

कई भक्त अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार फल-मिठाई, नारियल-फूलमालाएं लिए हुए उस ठेलमठेल में आगे बढ़ने की कोशिश में थे कि एक विदेशी गोरा भक्त—लंबा रेशमी कुर्ता पहने, गले में जवा के फूलों की माला डाले, कपाल पर कुंकुम-सिंदूर का बड़ा सा टीका धारण किये—सबसे आगे। उन्हें ठेलते हुए सेठ झिंगियानी। तुंदिल तनु, गंजे, टोपी धारण किये, एक हाथ में माला और धोती का एक पल्ला वासकोट की जेब में डाले। और उनके साथ क्या देख रहा हूं—वही महादेव (यानी सदानंद वालावलकर, यानी देवी सेन, यानी अरविंद मल्होत्रा—बाप रे बाप ! एक ही जन्म में कितने पुनर्जन्म !) अब की बार उनकी हुलिया बदली हुई है—सिर घुटा हुआ, एक चोटी रखे, बदन में गंजी और एक जनेऊ, एक कान पर एक फूल खोंसा हुआ। आंखों पर चश्मा काले रंग का, आधी कटी मूछ और नीचे धोती पहने। यह रूप तो पहले कभी देखा ही नहीं था।

सब भक्तों की भीड़ को ठेलकर यह तीन—विदेशी, सेठजी और महादेव चक्करदार कई सीढ़ियां पार कर ऊपर पहुंचे। एक मृगासन। उस पर बिल्कुल नयी लकदक इंपोर्टेड केसरिया शिफौन की साडी पहने एक युवती। रूपवती। बड़ा-सा कुंकुम तिलक लगाये। बाल रूखे, पीठ पर छोड़े हुए। गले में रुद्राक्ष की माला। हाथों में रुद्राक्ष के कंकण, बांहों पर रुद्राक्ष। बस खिल-खिल हंसती जा रही है।

सेठ झिंगियानी—"अहाहाहा मां ! कैसा आनंदमय रूप है। हमने सुना आप विलायत गई थी ?"

जया माता (मुस्कुराती हुई)—"भक्तों ने बुलाया था। पर उतनी दूर जाने का आदेश नहीं था। नेपाल तक गई थी सिर्फ।"

महादेव ने मूर्ख की तरह प्रश्न किया—"क्या रक्सौल होकर ट्रेन से

गई थी ?"

जयमाता (दोहरी होती हुई, हंसी के मारे)—"रेल-वेल नहीं, हम हवाई जहाज से गये थे। गुरुजी के वहां भी इतने सारे भक्त हैं। वे कह रहे थे, और रुकिये। हमने ही मना कर दिया।"

सेठजी—"धन्य है, धन्य है!! आपके लिए क्या दुर्लभ है। आपसे मिलवाने आज यह डच आदमी लाया हूं। यू स्पीक हेंडरसन—दि मदर इज वेरी काइंड (माताजी परम कृपालु हैं)। शी विल आन्सर एवरी क्वेश्चन, कैन साल्व एनी प्राब्लेम (वह हर प्रश्न का उत्तर देती हैं, वह तुम्हारी किसी भी समस्या का समाधान कर देंगी।"

माताजी उत्तम अंग्रेजी, बंगला, हिंदी, गुजराती, उर्दू सब भाषाएं फर्राटे से बोलती थी। आगे जो प्रश्नोत्तरी हुई—विदेशी और जयमाता के बीच वह बातें अंग्रेजी में हुईं—पर यहा उसका अनुवाद दे रहे हैं (पाठकों की सुविधा के लिए)

मां—"आपका नाम क्या है?"

विदेशी—"राबर्ट हेडरसन।"

मां—"क्या करते हैं?"

विदेशी—"व्यापार था।"

मां—"अब?"

विदेशी—"अब तो अध्यात्म और योग मे मन लग गया है।"

मां—"क्यों आये हैं?"

विदेशी—"आपकी शरण में आया हूं। मुझे सिद्धि चाहिए।"

"वह इतनी आसान नही है।"

"जानता हूं।"

"मन की तैयारी है?"

"हां।"

"तन की?"

"मतलब?"

"नौजवान हो, बहुत संयम से रहना होगा। खाना-पीना?"

"शाकाहारी हूं। शराब की बूंद को भी नहीं छूता।"

"उत्तम। विवाहित हो?"

"नहीं।"

"तो यह भी ठीक ही है। कितना समय दे सकते हो?"

"जितना आप कहें।"

"और धन?"

"जितना आप कहें।"

"अच्छा, एकांत में मिलना—हमारा उधर एक आश्रम है—सेठजी वहां ले आयेंगे। तब बातें होंगी। वैसे मैं जानती हूं, तुम्हारी समस्या क्या है?"

"क्या है?"

"मन की अशांति।"

"कारण?"

"राजनैतिक षड्यंत्र में तुम्हें फांसा गया था। अभी तक पूरी तरह से उस कलंक से बरी नहीं हो। पर गुरु की कृपा से क्या नहीं हो सकता?"

सेठजी—"धन्य हैं, धन्य हैं! मां सबके मन का जान लेती हैं। कितना प्रताप है!" (गद्गद होकर आंसू झरने लगते हैं।)

"और तुम? तुम्हारा क्या नाम है?"

"आशुतोष।"

"बंगाली हो?"

"नहीं! शिववाचक नाम है। सब शिव ही होगा।"

"आपकी कृपा मां!" (सेठजी बीच-बीच में भाव-विह्वल स्वर में)

"क्या कठिनाई है?"

"आप तो सब जानती हैं माता—दिल की बात।"

"तुम छिपना चाहते हो। वह व्यवस्था हो जायेगी। सेठजी इन्हें अपनी उस नंबर दो की हवेली में ले जाना। सेवा, टहल करेंगे।"

"इनसे अपना खाना बनाना वगैरह नहीं हो पायेगा।"

"कोई बात नहीं। वहां अनेक दासियां हैं। हम सभी भगवती के दास-दासी हैं।"

सेठजी बोले—"महामाता ! आप इनका उद्धार करो। जो भी खर्चा लगेगा, देने को तैयार हूं। इनके पास एक बहुत बड़ा राज है। उसके सहारे मेरा सारा बिजनेस ठीक हो जायेगा। आप तो जानती ही हैं, वे सब बातें यहां सबके सामने कहने की नहीं हैं। अमुक प्रदेश का वित्तमंत्री तो माताजी आपकी कृपा का प्यासा है। उसे एकाध बूंद कृपा-कटाक्ष से दे दीजिये। आगे हम सब संभाल लेंगे।"

माताजी फिर हंसी। "अपने यहां भजन में ले आना" इशारा करके वह और भक्तों की ओर मुड गयी।

भीड बराबर बढ़ती जा रही थी। भक्तों का अंबार जुट रहा था। माताजी के लिए यह कुछ नया नहीं था। भक्तों में बड़े-बड़े स्मगलर, पुलिस के आफिसर, सब राजनैतिक दलों के दादा लोगों से लगाकर गरीब बेचारे भोले-भाले, साधनहीन, निम्न मध्य वर्ग के अशिक्षित जनसाधारण भी थे। धर्म नामक इस बन्या में सब बहे जा रहे थे—फूल, दिये, पत्ते, घासफूस, लकड़ी के टुकडे। किसी का भेंट चढ़ावा वस्त्र अच्छी-बुरी सब तरह की चीजें···

यह धर्म ही था या अंध-विश्वास ? या दोनों मिश्रित थे ? मनुष्य का चमत्कारों के लिए आदिम कुतूहल, प्रत्याशा से भरा मन, श्रद्धा और आस्था से विकसित हृदय, प्रश्नहीन दिशा द्वारा दिमाग, स्वार्थ से लिपटा परमार्थ, संस्कारों से आवेष्ठित भाग्यवाद, नये रूप में प्रस्तुत था। क्या यह धर्म का व्यवसायीकरण था ? या निराश होकर व्यवसाय धर्म की ओर झुक रहा था।

यह एक विराट परस्पर-वंचना का क्रम था। नियतिवाद में एडी-चोटी तक डूबे भारतीय के लिये कोई नई बात नहीं थी। अब उसका आधुनिकीकरण हो गया था। अब उसमें जेट विमान से घूमने वाले साधु-सन्यासी, साथ में सुन्दरी शिष्याओं की मालिका लिये घूमने-वाले ब्रह्मचारी, और रात-दिन मठों की प्रापर्टी के लिए झगड़ा करनेवाले और हाई कोर्टों तक जाने वाले संन्यासी (?) शामिल हो गये थे। पाखंड का ऐसा रूपान्तरण कि सब उसे एकमात्र मुक्ति-मार्ग मानें, कभी और नहीं देखा गया था। सब प्रचार-माध्यमों का उपयोग !

हवेली नं० 2, जहां आशुतोष पहुंचा, क्या चीज थी ?

इसके पहले कि हम हवेली नं०2 तक जायें पहले 1983 में कलकत्ता को समझ लेना चाहिए। यह महानगर, जिसकी आबादी एक करोड़ के करीब पहुंचने जा रही है, एक विराट पैमाने पर चलनेवाली विरोधाभासों का मजमुआ था।

यहां एक ओर अट्टालिकाएं थीं, जहां अजीर्ण के शिकार लोग खाते-खाते नहीं अघाते थे और उन्हीं के पैरों तले नाली में से जूठन निकालकर उसी पर पलने वाले भिखारी बालक थे। यहां एक-एक करोड़पति की छह छह मोटरगाड़ियां थीं, जिनमें कई 'इम्पोर्टेड' भी, तो दूसरी ओर वहां एक लाख रिक्शाचालक थे, जिनके अपने रिक्शे नहीं थे। यहां एक ओर कला और संस्कृति के नाम पर हजारों रुपये एक शाम या रात्रि में नष्ट कर देनेवाले मनचले थे तो दूसरी ओर भूखें मरने वाले मनस्वी कलाकार थे जो असामाजिक और अल्कोहोलिक बनकर मरे, चाहे ऋत्विक घटक हों या राजकमल चौधरी। यहां क्रांति के घरेलू उद्योग और पिछवाड़े में रसगुल्लों की तरह बम बनाने के अवैध कारखाने थे, तो शांति के नाम पर नोबल पुरस्कार प्राप्त करनेवाली मदर टेरेसा थी। यहां साहित्य के नाम पर सस्ती वाहवाही के लिए या दुकानदारी चलाने के लिए तत्पर सेठ-चाटुकार-दलाल किस्म के लोग थे, तो ऐसे भी अक्खड़ और एकसुरिये लोग थे जिन्होंने 'आन न जाने पावें, जान भले ही जावें' का व्रत निभाया। यह अरविंद और रवींद्र की भूमि थी, यह लार्ड क्लाइव और मीरजाफर और विदेशी तस्करों की लीलाभूमि भी रही। यहां काली कलकत्ते वाली नित्य बलि लेती हुई तीन आंखों से लपलपाती लाल जीभ चबाती, लपलपाते खड्ग को ऊपर उठाये सदा प्रस्तुत थी, तो यहीं सर्वाधिक शोषित, दीन-दुखियारी शरणार्थी स्त्रियों की अनाम पंक्तियां थीं। 1943 का अकाल, 1946 के बड़े रक्तपात, 1947 का विभाजन और उसके बाद अस्थिर सरकारों के बीच बराबर हुगली गंगासागर में मिलने बहती जाती रही। यहीं से नेताजी सन् 40 में जर्मनी भागे, यहीं से गांधी ने नोआखाली यात्रा शुरू की, यहीं से हजारों-हजारों नौजवान कालापानी और फांसी के तख्ते पर झूल गये—विप्लवीदल से नक्सलवाड़ी तक। यहीं से पहले अखबार निकले,

यही सबसे पुराना 'जादूघर', हिंदुस्तान का सबसे पुराना वनस्पति उद्यान, चिड़ियाघर, राष्ट्रीय ग्रंथागार, पहली युनिवर्सिटी सब कुछ अभी तक चल रहे हैं—ट्राम और रिक्शे भी पुरानी दुनिया के खंडहर और भग्नावशेष—यहीं कभी शरत्चंद्र ने अपनी नायिकाओं को गंदी गलियों में नाचगान करते हुए देखा, यहीं से कभी हिरोशिम लेबदेफ ने अपना पहला थियेटर चलाया, यहीं न्यू थियेटर्स में कुन्दनलाल सहगल गाते-गाते मर गये, यहीं देवीप्रसाद रायचौधरी और रामकिंकर बैज ने अपने विराट् शिल्प बनाये, यहीं यामिनी राय पट की नई दुनिया खोजते रहे, यहीं वैज्ञानिकों ने लाजवंती मे मानवी संवेदना देखी, यहीं···

और आज वही चौरंगी एक विराट मलवे के ढेर से आधी-दबी—चूंकि शैतान की आंत की तरह कभी खत्म न होने वाली पाताल रेलवे वहां बन रही है, अपने पुराने अंग्रेजी राज के जमाने के सपने मन में लिये, कोढ़ी बुढ़िया की तरह, फुटपाथ पर भीख माग रही है। आज वही सब बड़े-बड़े स्थान एकदम मटियामेट हो रहे हैं, जैसे सबके ऊपर मटियाबुर्ज की छांह फैल गयी हो। यहीं पर जीवन अपनी मथर गति से रेंग रहा है, सरक रहा है किसी आदिम ऊर्जा की गति मे, किसी यंत्रचालित विराट अजदहे की गति से, पर इस ड्रैगन से अब कोई नही डरता। वह स्वयं एक दयनीय छिपकली बन गया है। उसी कलकत्ते के एक उपनगरीय हिस्से की एक पुरानी कोठी मे इस जयमाता के तथाकथित 'न्यास' का आफिस है। इस कार्यालय मे नये-नये चेलों को रख लिया जाता है। वे अलग-अलग काम में लाये जाते हैं। कुछ थोडे समय के लिए उम्मीदवार के बतौर होते हैं। कुछ रईस वहां 'मन की शांति' खोजने आते हैं। कुछ काफी चतुर लोग माताजी की अनेक 'सेवाओं' में हाथ बटाते हैं। देश-विदेश मे माताजी के आश्रमों के जाल फैले हुए है। कई राजनैतिक कार्यकर्ता भी वहां 'मन की शांति, खोजने आते हैं। अनेक स्वयंसेविकाएं हैं, बड़ा अच्छा कैंटीन चलाया जाता है। एक 'एअर कंडीशन्ड' ध्यान-घर भी है। और क्या चाहिए? लोगों को दिखावे लिए जो दान आता है उससे एक होमियोपैथिक मुफ्त का अस्पताल चलाया जाता है। धार्मिक ग्रन्थों का ग्रंथालय-वाचनालय है। प्रौढ़ साक्षरों के पढ़ने की व्यवस्था है, अंधशाला है, अनाथ बालिकाओं

को सिलाई-कढ़ाई सिखाई जाती है। और क्या-क्या परोपकार चाहिए ? समाज फिर भी अकृतज्ञ है, इसे सिर्फ दिखावा कहता है।

जयामाता की इस हवेली नं० 2 में आशुतोष पहुचा दिये गये। उनसे 'नाम के वास्ते' (अभिनव) कुछ फी ली गई। बाकी तो 'योगक्षेमं वहाम्यहे' —सबका खर्चा ऊपर वाला ही चलाता है। वह सचमुच ऊपर वाला होता है। कोई नहीं जानता कि महादान कहां से आता है। हां, इसमे 'ऊपर' वाले का ऊपरी महत्त्व कायम रखने के लिए कुछ लोगों को नीचे वाला होना ही पडता है। वे नीची जात के नही, गरीब तबके के दास-दासिया, भक्त-भक्तिनें हैं। वे नीचे ही रहती हैं। तभी ऊपर की कोठरियों में बड़े लोग अपना सब बड़ा-बड़ा काम कर सकते है। इसी मे महातम है— 'छोटन को छोटो रखै, यही बड़ाई जान' !

आशुतोष से पूछा गया—"वह क्या-क्या कर सकता है ?"

लिखना-पढना, पढाना, प्रचार, अनुवाद, पुस्तिकाओ का वितरण, मुद्रण-संपादन यह सब वह जानता है। कुछ चित्र भी बना लेता है। आवश्यकता पड़ने पर पोस्टर, साइनबोर्ड रंगना। भाषण देना। बड़े लोगों के साथ सेक्रेटरी के तौर पर काम करना, टंकन आदि-आदि।

"ठीक है, कल से आपकी ड्यूटी लगा दी जायेगी।" एक महिला ने उसे बता दिया। कमरा ठीक कर दिया गया।

आशुतोष का नया अज्ञात जीवन आरंभ हो गया।

17

अब आशुतोष ने अपना नाम गुजराती ढंग से पटेल रख लिया था। थोड़ी-बहुत गुजराती वह पढ़ लेता ही था। हवेली नं०2 मे उसका परिचय *जयामाता के प्रकाशन विभाग से संबद्ध विनीता से हुआ और वह बढता*

न्हो गया।

आशुतोष ने मन ही मन सोचा कि इस तरह अज्ञातवास में रहने के लिए यह स्थान बहुत सुरक्षित है। कलकत्ता के उपनगर में सब निम्न मध्यवित्त वर्ग के लोग रात-दिन दो जून भात पाने की चिंता मे जुटे हुए हैं। किसे फुरसत है दूसरे का दुख दर्द जानने की ?

विनीता से आशुतोष ने पूछा—"तुम जायामाता की सेविका कब से और क्यों बन गई ?"

"दो साल से यहां हूं। और 'क्यों' का उत्तर तो भाग्य या भगवान के पास ही है।"

"नही, कुछ तो कारण हुआ होगा ?"

"हां, मैं बाल-विधवा थी। सास-ससुर ने बहुत तंग किया ! देवर की आंख मुझ पर थी। मैं उस तरह जिंदगी नही बिताना चाहती थी।"

"मां-बाप के घर क्यों नहीं गई ?"

"वहां कौन बचा है मेरा ?"

"क्यो ?"

"पिता नेपाल चले गये। मां बचपन में ही मर गई। भाइयों ने बोझ समझकर उस अधेड़ रोगी से ब्याह दिया। जानते हुए भी कुएं मे ज़िंदा धकेल दिया।"

"कितने दिन गृहस्थिन रही ?"

"तीन साल निभाया। उसकी रात-दिन सेवा-टहल करती रही। वह किसी काम का बचा हुआ नही था। रात-दिन खांसता रहता। दमे का बीमार था। तपेदिक भी थी। मैंने बहुत पूजा-पाठ की। पर कुछ काम नही आये। वह बच नही सका।"

"बहुत दुख की बात है। पर कोई नौकरी ही कर लेती।"

"पढ़ाई अधूरे में छूट गई। दर्शन मेरा प्रिय विषय था। मैंने कई किताबें पढी थीं। तभी इस जयामाता के एक भक्त ने मुझे माई का दर्शन कराया।"

"क्या उनकी कृपा नही हुई ?"

"केवल गुरु-कृपा से क्या होता है दादा, पूर्वजन्म का संचित पुण्य भी

चाहिए।"

"तुम तो पहुंचे हुए साधु-साध्वी जैसी बातें करने लगी। क्या यम के पास से सत्यवान के प्राण सावित्री वापिस नहीं ले आई थी ?"

"हां, वह पुराणों की कहानिया हैं। तब सत्य-युग था। अब बात दूसरी है। अब सारे संबंध स्वारथ के हो गये हैं। इस हाथ दे, उस हाथ ले। प्रेम दिखावा है।"

"तुम इतनी निराश क्यो हो, विनीता ?"

"और नही तो क्या करूं ? पता नही आयु के कितने सोपान अभी चढ़ने शेष हैं ? पता नही कितनी दूर की यह मंजिल है।"

"क्या दुनिया सिर्फ अंधेरी ही अंधेरी है ?"

"कही कोई रोशनी की किरण—एक हलकी-सी उसकी झलक भी मुझे दिखाई नही दे रही है।"

"क्या सारा दर्शन-शास्त्र पढ़कर तुमने यही हासिल किया ?"

"छोड़ो भी, अपनी बताओ दादा, आप क्यो जया के पास आये।"

आशुतोष थोड़ा झिझका। वह सच-सच बता नही सकता था। अपने को छिपाना चाहता था। पर यहा उसे लगा कि एक हृदय है जिसके सामने वह कुछ खुल सकता है। प्रतिदान की आशा है। यहां न 'एन०आर०' के लबे-लंबे हाथ के खून रंगे नाखूनो का शिकंजा है, न ऊषा की वह भयावह छाया ही, जिनसे वह बचना चाहता है। उसने जीवन मे अनेक पाप किये, पर कही तो परिताप का अवसर मिल सकेगा ? कोई तो है जो उसे समझना चाहता है। आशुतोष थोडी देर मौन रहकर बताने लगा—

"विनीता, मेरी कहानी भी बहुत कुछ तुम्हारी जैसी है। तुम विधवा हो, मेरा विवाह नही हुआ (यहां वह झूठ बोल रहा था) बस इतना ही फर्क है।"

"क्या है तुम्हारे और मेरे जीवन मे समानता ?"

"तुम्हारी मां बचपन में मर गई। मेरी भी मां नही रही। पिता ने दूसरी शादी कर ली। सौतेली मा ने मुझे कभी प्यार नही दिया।"

"तो क्या तुम्हारा और कोई भाई नही था।"

"था, पर वह मुझसे एकदम उलटा था।"

"कैसे ?"

"वह मारपीट करता। घर पर आकर झूठ बोलता। सबकी सहानुभूति पाता। छोटा था न। मुझे सब दुरदुराते। सब चाहते थे कि मैं पढ़ाई पूरी करने से पहले ही कमाने लग जाऊं। यह कैसे संभव था ? मेरी किताबें वह चुराता। पन्ने फाड डालता मेरे होम-वर्क के। मेरे अपमानित होने में उसे बड़ा आनन्द मिलता था।"

"क्या पिता तुम्हारा पक्ष नही लेते थे।"

"नही, वे सदा छोटे भाई का ही पक्ष लेते थे।"

"तो घर के बाहर भी कोई तुम्हारा मित्र सहानुभूति देने वाला नही था—पास-पडोस मे, स्कूल-कालेज में, रिश्ते-बिरादरी में।"

"नही, कोई मुझे समझने की कोशिश ही नही कर रहा था।"

"यो शुरू होती है एक बे पहिचाने बने रहने की दुनिया। एक तरह से सब चीजों से अलगाव। एक ऐसा बोध कि हम सबसे कटे हुए हैं। कही कोई छोटा-सा भी, हलका-सा भी संबंधों का तंतु शेष नहीं है। नित्य प्रताडित, अपमानित, वंचित, एक कुचली हुई, तुडमुड़ाई हुई, आधी-अधूरी जिंदगी मे हम जीते रहते है। कुछ है जो समझौता कर लेते हैं। अर्द्ध-सत्य को ही पूरा सत्य मान लेते हैं। यह धोखा बड़े पैमाने पर लोगों को हो जाता है। जानती हो विनीता, बड़े-बड़े लोगों को यह मुगालता रहता है। बडे-बड़े राष्ट्रों को हो जाता है।"

"सो कैसे ?"

"गांधी समझते रहे कि सब हिन्दू-मुसलमान, हरिजन-सवर्ण उनके साथ हैं। पर सच्चाई यह थी कि मुसलमान जिन्ना के साथ थे। हरिजन आंबेडकर के साथ। हिन्दू सावरकर और गोडसे के साथ। गांधी के साथ शेष दुनिया थी, सिर्फ उनका बड़ा बेटा ही उनके साथ नही था। यह कैसा चक्कर है। जो भगवान से लगाव लगा लेते हैं, उनसे दुनिया छूट जाती है, जो दुनिया से लगाव रखते हैं, उनकी तो दीन और दुनिया दोनों छूट जाती है…।"

"तुम अपनी बात करते-करते बडे सवालों में उलझ गये। क्या इतना ही काफी है कि घर मे सुख नही मिला तो घर से भागते फिरे ?

"कीट्स की कविता है :

एवर लेट दि फैंसी रोय
प्लेज़र नेवर इज़ एट होम !"
(कल्पना को मुक्त उड़ने दो
घर मे कभी भी सुख नही है
या सुख कभी घर मे नही रहता)

"यह भागम भाग सब अच्छे कवियों मे होती है।"

"तुम्हें कविता पसन्द है ?"

"क्या तुम्हे कविता अच्छी लगती है ?"

"किसे अच्छी नही लगती।" शेली ने कहा—"वी सीक फार दैट इज़ नॉट।" (जो नही है उसी के पीछे हम लगे है)। रवीन्द्रनाथ का 'जाहा चाई ताहा भूल करे चाई, जाहा पाई ताहा चाई जा' यही तो है। महादेवी वर्मा ने 'पीडा में तुझको ढूंढा, तुझमे ढूढूंगी पीडा' कहा था।

"तुम हिन्दी कविता पढते हो ?"

"हिन्दी ही क्यों, जिस भाषा मे भी अच्छी कविता हो, मैं पढ़ता हूं। मनुष्य एक चिर-विरही प्राणी है। संस्कृत में तो कालिदास ने पूरा 'मेघदूत' विरही यक्ष की भावनाओ को लेकर लिख डाला। कल्हण ने कहा है—

कण्ठग्रहे शिथिलता गमिते कथं चि—
द्यो मन्यते मरणमेव सुखाभ्युपायम्
गच्छन्स एव न बलाद्विधृतो युवाभ्या—
मित्युज्झिते भुजलते वलयैरिवास्या:।"

"इसका अर्थ क्या हुआ ? मैं इतनी सस्कृत नही जानती।"

"विरहिणी दुर्बल हो गयी है और गहने ढीले हो गये हैं। यह स्वाभाविक ही है। कंगन हाथ से उतर गये। जो प्रिय कंठालिंगन के किसी प्रकार से शिथिल होने पर मरण को ही सुख मानता था, वही प्रिय प्रवास मे चला गया और ये भुजाएं उन्हें रोक नही पाईं। इसलिए मानो रूठकर वलयों ने या कंगनों ने भुजाओ का साथ छोड़ दिया है।"

"आप भी कैसी-कैसी बातें करते हैं ? इससे अकेलापन कम होने के बदले बढ़ता है। यह दुख को कम करने वाली बात नही है। मैं चलूं…।"

"एक और श्लोक सुनकर जाओ, विनीता ! संस्कृत वाले कमाल की कल्पना करते हैं।"

"यह किसकी रचना है ?"

'पता नहीं, नाम उसका नहीं मालूम। पर क्या बढ़िया बात कही है विरहिणी के प्रसंग में—

काचित्पुरा विरहिणी परिवृद्धिहेतो—
र्यस्यै ददेश सलिलं नवमालिकायै।
सा पुष्पितेव जलमश्रुवशाद् वियोगे
तस्यै प्रदाय कथमप्यनृणी बभूव ॥"

"इस पद में क्या विशेषता है ?"

"फूली हुई नवमल्लिका लता को देखकर विरहिणी की आखें जल से भर आईं, क्योंकि प्रियतम के वियोग में फूल नहीं शूल से लग रहे थे। जब इस विरहिणी ने नवमल्लिका का पौधा लगाकर उसके विकास के लिए उसे जल से बराबर सिंचित किया था, उसके बदले में नवमल्लिका ने अपनी ओर से यह जल देकर ऋण से उऋण होना चाहा था।"

"अच्छा अभी तो मैं जाती हूं। रोज आऊंगी—अच्छी-अच्छी बातें सुनने···विनीता आशुतोष की शिष्या हो गई।"

18

आशुतोष कभी-कभी डायरी लिखता था। अब की बार उसने बहुत-सी बातें, अपने जीवन और बाहर के जगत् के बारे में लिख डालीं। यद्यपि उनमें कोई बहुत गहरी या ऊंची नई बातें नहीं थीं। पर लिखने से वह सोचता था कि मन का दर्द कुछ कम होता है। उस डायरी के अंश यों थे :

"आदमी अकेला रहना चाहता है। उसी मे उसे सुख लगता है। पर वह अकेला रह ही नही सकता। बचपन से उसे परिवार, कलत्र, मित्र बड़ा होने पर पत्नी-पति, बच्चे और कितने-कितने लोग घेरे रहते हैं। वह निस्संग रह ही नही पाता, और सोचता रहता है कि निस्संगता ही अन्तिम सुख है।

यही अकेलापन, जिसे वह सुख की कुंजी मानता है, उसके दुख की जड़ है।

क्या वह इसलिए दुखी है कि उसे भारी दुनिया में उसके मालिक, *स्वामी, माता-पिता, आत्मीय-स्वजन सबने निराश्रित छोड दिया है?* क्या वह इस अलगाव से दुखी है?

पर पहले तो मनुष्य जंगल में, गुफाओं में रहता था। उसने बनाया हुआ कोई सर्वशक्तिमान, सर्वकृपावान ईश्वर भी नही था। तब वह क्या अकेलेपन के दर्द से छटपटाता नही था?

नही, वह इसलिए दुखी था कि वह अपने आपको पहचानता नही था। उसकी पुकार थी—कौन हूं मैं? कौन हो तुम? क्या हूं मै?

'क स्त्वम्, कोऽहम्, क्वाति···'

उसने बहुत दर्शन और चिंतन के जाल बुने। काफी उधेड़-बुन की। तर्क के बारीक रेशों मे वह उलझ गया। 'फैली अलकें ज्यों तर्क जाल।' उसे समाधान नही मिला। वह यह 'अपनापन' पूरी तरह पहचान पाया। बीच-बीच मे एक झलक मिलती। वह मिथ्याभास लगता। मृग-मरीचिका की तरह। जैसे उसने रस्सी को ही साप मान लिया हो। सीप को ही चांदी समझ लिया हो।

वह भटकता रहा, भटकता रहा।

उसके हाथ में एक दिन एक वस्तु आई—'विज्ञान!'

उसने समझ लिया कि अब वह अकेला नही रहेगा। सारे पंच महाभूतों पर वह विजय पा सकता है। उसके हाथ में अपरिसीम अनन्त शक्ति है।

वह उस शक्ति के मद में, उस नयी खोज के अहंकार मे कई वर्षों और सदियों तक डूबा रहा। अब इन्सान बिल्कुल आश्वस्त हो गया कि

उसने अपने आपको पूरी तरह जान लिया है। बाहरी दुनिया पर उसका पूरा नियंत्रण है।

पर वह सच नहीं था।

उसी के बनाये हुए समाज, के अर्थव्यवस्था के, राजनीति के नियम, कानून, बंधन उसे पिंजरे जैसे लगने लगे। यह बेड़ियां उसी ने बनाई थी। उसे कभी भी अनुमान था कि औरों के लिये बनाये ये बुद्धि के भेद, ये भूलभुलैयाएं, कठिन पहेलियां, उसी को अपनी जकड़ में बांध लेंगी। उसी का पालतू विज्ञान अब बड़ा होकर, खूंखार बना हुआ, उसी को आंखें दिखा रहा है। उसी पर आंखें तरेर रहा है। अब वह क्या करे ? वह भस्मासुर वाली अवस्थायें हैं। मोहिनी ने उसे नाच सिखाया—और सहज भाव से उसने अपने सिर पर ही हाथ रख दिया। वही पूरी तरह भस्म हो गया।

मनुष्य का यह आत्म-प्रवंचना का नाटक लाखों वर्षों से चला आ रहा है। सृष्टि के आरंभ से। शायद सृष्टि के अन्त तक यों ही चलता रहेगा ?

धर्म ने कहा—देखो, तुम इधर-उधर मत भटको। हमे सब पता-ठिकाना मालूम है। हम रास्ता बताते है—हमारे साथ चलो।

आदमी धर्म के साथ चलने लगा। किसी ने कहा अन्तिम सत्य एक है। किसी ने दो, किसी ने तीन। किसी ने अनेक देवता बताये। पर वह चीज़ जिसे वह देवता मान बैठा वह पत्थर का बुत निकला। वह बोलता नहीं था, चलता नहीं था। एक ही जगह स्थिर था। चाहे वह शिव हो, या कावा, या सलीब। वह किताब हो या नाम, तस्बीह का मन का हो, या 'अनहद नाम'—वह परिभाषा से परे था इसलिए वहां भी उसकी पहचान उसे नहीं मिली। वह खोया-खोया सा फिर लौट आया।

जैसे पहाड की वर्फ़ानी चोटी पर चढ़ने के लिए जाने वाला पर्वतारोही निराश होकर लौटे।

विज्ञान नहीं, धर्म नहीं—फिर कहां है उसकी पहचान ?

क्या वह उस पत्र की तरह है जो 'डेड लेटर आफिस' पहुंच चुका है। चूंकि उस पर मुहर लगी है—'ठिकाना सही नहीं।' या 'इस नाम का आदमी यहां नहीं रहता।' या 'पता अधूरा है।'

कारण कुछ भी हो, वह लापता है।

बिन पहचान, बिन चेहरे का व्यक्ति, कटी पतंग-सा, झरते पत्ते-सा, गिरते हुए नक्षत्र-सा, ज्वालामुखी के मुह से लुढकते जाने वाले जलते पत्थर-सा, बेतरतीब बिजली-सा, अप्रत्याशित बाढ़ या आग-सा, यहां दर-दर भटकता रहा है। वह अश्वत्थामा है? या वह 'वार्डरिंग ज्यू' है? वह यायावर नक्षत्र मे जन्मा निरुद्देश्य पांथ है? चिर-प्रवासी है? क्या है वह—अपने को नही जानता, अपने रहबर को नही पहचानता, अपने आखिरी ठिकाने से नावाकिफ़ एक पेंडुलम मात्र है···

उससे दिशा-काल का बोध शायद औरो को मिल पाता है पर वह खुद दोनों से अन्धा है, बेखबर है। इसलिए चल रहा है कि किसी ने कई अरबों वर्ष पहले चाभी भर दी थी और अभी तक चल रही है। इसलिए बोल रहा है कि आरंभ में वह एक शब्द था, नाद था, 'कुन' था, अक्षर था—कुछ ऐसा था जो पहचान में नहीं आता था।

अन्धों की लिपि 'ब्रेल' आंखवालों के लिए क्या है?

जापानी चित्राक्षर जापानी न जाननेवालों के लिए क्या है?

सभी धर्मों के मुख्य मंत्र, जो वह भाषा नहीं जानते उनके लिए क्या है—निरे निनाद या शब्द? ॐ स्वाहा, मणिपद्मे हुं, णमो अरिहंताणो, इक्कनाम ओंकार, आमीन···

वह प्रणव और उद्गीथ और महामंत्र और दैवी शब्द क्या है?

मनुष्य की पहचान की पहली सीढ़ी या मनुष्य के अज्ञान का अहसास?

यह सब डायरी लिखने पर भी आशुतोष को चैन नही था? वह अरविंद मलहोत्रा, देवीसेन बनकर भी चैन पा सका? वह सदानंद बाला-वलकर बनकर भी कहां सुखी बना? वह महादेव शर्मा के रूप में चिर-असंतुष्ट बना रहा। अब वह आशुतोष पटेल बनकर क्या अपनी असली पहचान पा सकेगा?

'अपने आपको जानो! 'नो दाई सेल्फ'—उपनिषद् और बाइबिल बहुत चीखते रहे। मगर आदमी है कि वह बराबर अपने आपसे भागता फिर रहा है। इसी से वह कहीं नही है। और सभी कहीं अपने को

अटकाये-अटकाये फिर रहा हूँ।

अभी तो जयामाता ने उसे विनीता नामक एक दर्पण दिया है। देख, उसमें अपनी तस्वीर देख !

19

ऊषा और प्रशांत ने उड़ीसा के उस छोटे से सागर-तट के गांव से जाने वाली बसों का पता चलाया। मीना ने जिस शाम के बस की बात की थी, वह तो कलकत्ता की ओर ही जाने वाली थी। और कोई नहीं।

कलकत्ते के पास जिस जगह वह रुकती थी, वहां दोनों उस बस से आये। बस कंडक्टर से पता तो चला कि कुछ महीनों पहले एक दाढ़ी बढ़ाया युवक उस बस से गया जरूर था, और उसके साथ में बहुत से चित्र भी थे। पर उससे अधिक कोई और नहीं जानता था। टिकिट उसने बस के चलने से पहले ही खरीदा था। रुपया उसके पास बहुत रहा होगा, चूंकि सौ का नोट उसने निकाला। नाम उसने अपना लिखाया नहीं था।

यहां तक तो खोज ठीक थी।

अब उस दक्षिण कलकत्ता के उपनगर में ऊषा और प्रशांत ने होटलों की खोज शुरू की। यहां तक पता लगा कि एक महाकाली होटल में ऐसा एक युवक बस से आया था। और सात दिन ठहरा था।

ये भी उस होटल में ठहर गये।

होटल के बैरा से पता चला कि आदमी दिन-भर सोता रहता था। काम कुछ करता नहीं था। हां, जिस दिन वह यहां से चला गया तो सामान उसके पास बहुत कम था, और उसने दाढ़ी मूछ सब कटवा दी थी। सिर भी घुटवा लिया था।

"क्या वह बहुत पीता था ?"

"नहीं, ऐसी भी कोई बात नही।"

"शाम को जागकर बाहर कहीं चला जाता था। देर रात बीते वापिस होटल पर आता था।"

"उसके साथ के सामान का उसने क्या किया ?"

"उसने किसी को बेच-बाच दिया ?"

"बहुत से कागज और बड़े-बडे कैनवास थे, जिन पर तस्वीरें बनी हुई थी।"

झाड़ू देने वाले नौकर ने कहा—"हमारे तो समझ में नही आती थी, कैसी तस्वीरें थी। बहुत-सा पानी जमा हो ऐसे सीन थे। कहो बद्दल थे। कही मोर। कही कोई बडी-बडी आखो वाली लडकी। उसकी टोकनी में मछली ही मछली।"

"ऐसी तस्वीरें इस कुग्राम में खरीदने वाला कौन होगा ?"

"कबाड़ी को बेच दी होगी उसने।"

खोजते-खोजते एक गली की नुक्कड पर एक मुसलमान पेंटर साहब मिले। पेंटर तो क्या थे, फोटो भी खीचते थे। उनकी दुकान मे एक रंगीन पर्दा भी टंगा था। और साइनबोर्ड वगैरह रगाई-पुताई का काम भी करते थे। अकेले आदमी जान पड़ते थे। दुकान मे एक छोटा-सा बच्चा नौकर रखा हुआ था। उसे 'दास' कहकर पुकारते थे। बहुत दिनों के बाद कोई ग्राहक आया देखकर पेंटर साहब खुश हुए। बातचीत चालू रखने के लिए कुछ काम का बहाना जरूरी ही था। प्रशात ने कहा—'जमाल मियाँ पेंटर आप ही हैं ?"

"जी, हां।"

"हम पासपोर्ट साइज फोटो खिचवाना चाहते हैं।"

"बहुत ठीक है।"

क्या दोनों के खिचवायेंगे ? एक साथ खिचवा लीजिये। जोड़ा बहुत अच्छा बनेगा।"

दोनो हसे। ऊषा ने कहा—"मैं इनकी बीवी नही हूं, भाभी हूं।"

"मुआफ कीजिये। दाम क्या लेते हैं, साहब ! आजकल फोटो का

मैटीरिअल बड़ा महंगा हो गया है। इस गांव में कौन फोटो खिचवाता है और किसे आर्ट की पडी है!"

"फिर भी?"

"यही जल्दी होगी तो तीन कापी के पच्चीस लेंगे।"

"ठीक है।"

जमाल मियां अपना ही दुखड़ा सुनाने लगे। वे बांगला देश से आये बिहारी मुसलमान थे। पाकिस्तान जा भी नही सकते थे, बांगला देश वे वापिस जा नहीं सकते थे। बिहारी होने से उर्दू बोल लेते थे। बंगाली मुसलमानो से अलग थे। गांव मे एक मस्जिद थी और उसके पास ही एक मुस्लिम होटल। वही खाते-पीते थे। वही जाकर उर्दू अखबार भी पढ़ लेते थे।

प्रशांत अब मुख्य मुद्दे की ओर आया—"आपके पास एक माह पहले कोई आर्टिस्ट अपनी तस्वीरें बेच गया था क्या?"

"अजी, तस्वीरें क्या थी? हमारी तो समझ में कुछ आया नही। नीला-सफेद, काला कुछ धब्बो से भरा मामला था। वह उन्हें दरिया कहता था। दरिया-वरिया कुछ नही था। उसके दिल को बहलाने के लिए सिर्फ खयाल था! आदमी दरियादिल था। वह कैनवास बड़े सस्ते में फेंक गया। लगता था जैसे उस पर बोझ थे। किसी तरह उनसे छुट्टी करना चाहता था।"

"नाम क्या था उसका?"

"माधव-माधव कहता था। तस्वीरों पर 'एम' बना हुआ है।"

"वे तस्वीरें आपके पास है?"

"कुछ रखी हुई हैं। कुछ तो हमने सफेद पेंट लगवाकर बेच भी दी। कुछ के पोस्टर बना डाले। वह सर्कस कंपनी वाले आये थे। चाहते थे, तो कई पर कागज चिपकवा के दे दिए।"

बची हुई बड़ी-बड़ी चार-पांच तस्वीरें थी। वे धूलखाती कही मियानी मे पड़ी थीं।

बहुत इसरार करने पर जमाल मियां उन्हें ले आये। दास एक-एक पर से धूल झाड़ता-पोंछता जाता। दुकान में रखने को जगह भी नहीं थी।

ऊषा को उनमें से तीन बहुत अच्छी लगीं। एक में समुद्र का किनारा था लम्बा-सा, उस पर सीपें, शख, घोंघे, सांप बने हुए थे। उधर उठती हुई लहरें, दूर तक नीला विस्तार। बहुत दूर पर एक छोटा-सा धब्बे जैसा दिखने वाला जहाज। आसमान से उतरती हुई जगन्नाथ की मूर्ति···गोल-गोल चेहरा, गोल-गोल आंखें। बस, इसी तस्वीर में वही बडी-बडी फटी-सी आंखों वाली काली सांवली लड़की थी। ऊषा ने देखा कि उसके चेहरे और मीना के चेहरे मे बडा साम्य है। उसने बाए हाथ मे एक बडी-सी टोकनी ली है, जिसमे मछलियां ही मछलियां हैं। मछलियो में और मीना की आंखों में साम्य है। पीछे बैकग्राउंड में समुन्दर है और उसमे जाल बिछाता एक छरहरा सिलहुट है। ऊषा को वह मीना का बाप लगा। तस्वीर एक लाल सिंदूर वाले त्रिशूल के पास बैठे जटाधारी आंखें मूदे गेरुआ पहने बाबा की थी। उसके बैठने के आसन पर कई तरह के आसन बने हुए थे—बल्कि तांत्रिक भाषा मे 'यंत्र'। बाबा के पीछे एक दम अंधेरा था। कहीं से कोई खोपडी हंस रही थी। भयानक विद्रूप चित्र था। पर ऊषा ने हुज्जत करके वे तीनो कैनवास जमाल मियां के पास से रखवा लिये। वे सौ रुपये के नोट से ही खुश थे। बोले, "वह दस-दस रुपये मे दे गया था। पागल था या दुनिया का सताया हुआ। पता नहीं क्या खब्त सवार था। अव्वल तो ऐसी वाहियात तस्वीरें बनाई ही क्यों? और बनाई तो फिर बेच क्यों डाली?"

यहां तक तो अरविंद की खोज प्रशांत ने की थी।

इससे आगे?

तभी कलकत्ते में उनकी राव से मुलाकात हो गयी। उन्हें पता चल गया था कि एक नया चेला जयामाता के चक्कर में आ गया है। सेठ झंगियानी सिंधी थे। और उनका इन स्मगलरों की अंतराष्ट्रीय गैंग से यानी अप्रत्यक्ष रूप से एच. आर. से संबंध था। विदेशी जो डच तथा कथित दार्शनिक वहां आया था। वह थी 'डोप' (चरस गांजा-कोकैन) का ही 'कैरियर' था। नेपाल से आया था।

मध्यप्रदेश में मंदसौर से लगाकर बैंकाक, हांगकांग, काठमांडो, काबुल तक इन 'हशीश' के खरीद-फरोख्त करने वालों के जाल फैले थे।

मालवे की भूमि की थोडी-सी अफीम दूर-दूर तक जाकर दस हजार गुना दामों की 'हेरोइन' बन जाती थी। दुनिया बिकती है, बेचने वाला चाहिए। पुरानी कहावत 'दुनिया झुकती है, झुकाने वाला चाहिए' यह नया रूप था।

आशुतोष पटेल को पता ही नही था कि उसकी मूल पहचान उसके पीछे-पीछे साये की तरह मंडरा रही है। हम अपने आपसे कहां तक भागकर जा सकते है ?

20

"क्या हमारी पहचान खो जाने का कारण हमारा अतिशय मातृ-वात्सल्य है ?" आशुतोष अपनी डायरी मे लिखता जा रहा था, कि विनीता ने वह हिस्सा पढ लिया।

वह बोली—"आपकी मां सौतेली है, इसलिए आप सब माताओं पर लाछन लगा रहे हैं। वे पालनी है—बड़ा करती हैं। वे बच्चों को एक खास काट का बनाती है, जैसा वे चाहती है। पर वे पहचान मिटाती नही हैं।"

आशुतोष ने कहा—"रवीन्द्रनाथ ने ही लिखा था—मुझे मनुष्य बनाओ, हे बगजननी, बगाली बनाकर मत रखो। और रवीन्द्रनाथ ने लिखा—

'अतल कालो स्नेहेर माझे डुबिये आमाय स्निग्ध करो,—मुझे गहरे काले स्नेह मे डुबोकर हे श्यामा माता स्निग्ध करो !"

विनीता—"नहीं, नही, रवीन्द्रनाथ की चित्रा, श्यामा नही है—वह नाम वर्णामयी है, विचित्रा है, उर्वशी है।"

आशुतोष—"देखो, 'तोमार राते मिलाय आमार जीवन साझेर रश्मि रेखा।" (तुम्हारी रात मे मेरे जीवन संध्या की रश्मि-रेखा मिला दो)

यह भी उन्होंने ही लिखा है। अंतिम दिनों में वे श्यामली में रहने लगे। संथाली लड़की के कितने चित्र उन्होंने बनाये। शक्ति-पूजक वे नहीं थे, पर वे भी एक जगह कविता में लिखते हैं—

डान् हाते तोर खड्गज्वले
बां हाते करे शकाहरण
दुई नयने स्नेहेर हांसी
ललाट नेत्र आगुन बरण

विनीता—"बंगाली के लिए मां 'वंदे-मातरम्' वाली 'खरकरवाले', आयुधों से सज्जित दुर्गा ही है।"

आशुतोष—"अंतिम दिनों में रवीन्द्रनाथ रुद्रतांडव नृत्यरत शिव का आवाहन करने लगे थे। बहुत पहले उन्होंने कहा था—

"कालीरे' रहे बक्षे धरी शुभ्र महाकाल' (परिशेष, 1927) काली को वक्ष मे रखे हुए हैं शुभ्र महाकाल! इसी से मैं कहता हूं कि इस घेरे से वह छूट नही सके। वही माया है, वही कवींद्र की छलनामयी है।"

विनीता—"जयामाता कहती हैं कि काली और काल दो अलग-अलग चीजें नही है। वे एक ही रूप के दो नाम हैं।"

आशुतोष ने कहा—"ठीक ही तो कहा है। सारे मर्मी, रहस्यवादी उसी श्याम-श्यामा के रग से सने हैं। कृष्ण और काली असल मे एक ही हैं। मन जो मां को बुलाने जाता है वह कहां रह पाता था। वह उसी रंग मे खो जाता है।"

मा बोले डाकिस ना रे मन
मा के कोथा पाबे भाई
थाकते एशे दिता देखा
सर्व नाशी बेंचे नाई (रामप्रसाद)

जो सबका संहार करनेवाली है। वह कैसे बची रहेगी? वह किसे बचायेगी? शायद संहार हो जाता ही उसकी दृष्टि मे बचा है।'

विनीता—"आपने अभिज्ञा की सही परिभाषा दे दी। जब तक यह, तू, मैं, वह, यह सब अलग-अलग पहचाने जाने वाले अभिधान हैं, तब तक उनमें वह परमतत्व कहा है? वह पराशक्ति तो सर्वव्यापिनी है। इसीलिए

वहां ये सब छोटी-छोटी अमिताएं लापता हैं। जयामाता कहती हैं कि जैसे समुद्र मे लहरें, या लहरो मे बूंदें, सब पानी है। पर सूक्ष्मता से देखो तो पानी भी कहां है? वह एक प्रक्रिया है—जड़ चैतन्य मे उसका खेल चल-अचल आभासों में है। पानी का दूसरा नाम 'जीवन' है।"

आशुतोष— "जानो ना रे मन
जगत करणकाली शुधू मेयें नय
मेघेर वरण करिये धारण
कखनो कखनो पुरुष हय"

रामप्रसाद का यह गाना मुझे बहुत अर्थपूर्ण लगता है। वही प्रकृति है। वही पुरुष है। रामप्रसाद कहते हैं कि हे मन, तू जान ले, जगत्-कारण काली केवल लडकी नही है। मेघ के वर्ण वाली वह कभी-कभी पुरुष भी बन जाती है।' तो पहचान हमारी इस द्वैती दुनिया की है कि यह स्त्री है। यह पुरुष है। वह परमत्व तो इन भेदों से परे है—या कि दोनो को अपने मे समाये हुए हैं। शायद पहचान यही से शुरू हो जाती है। पता यही से लगता है—यह मां हैं, यह बच्चा है। यह शक्ति है, यह अशक्त हैं…

इस तरह से काव्यशास्त्र विनोद मे आशुतोष और विनीता, एक दूसरे को और नज़दीक से पहचानने लगे थे कि एक दिन एक विचित्र बात हुई।

हवेली नं०-2 में एक अजनबी आया और उसने एक सवेरे आशुतोष के बंद दरवाजे पर खट्-खट् की।

आशुतोष वैसे अजनबियों से सावधान रहता था। पर उसने दरवाजा खोला। एक साधक खड़े थे। पैरों मे खड़ाऊं। पाजामा-कुरता पहने। आते ही उन्होने नमस्कार किया—आशुतोष बाबू आप ही हैं?

"हां।"

"मैं आपसे बातें करना चाहता हूं।"

"कीजिये।"

"नही, एकांत मे आपसे कुछ पूछूगा। दरवाजा बद कर लू।"

अब आशुतोष को कुछ सदेह हुआ उसने कहा—यहां दरवाजा बंद करके कोई बातें नही होती। सब चीजें खुली पुस्तक की तरह हैं। कहिए।

उसने छूटते ही पूछा—"आप अरविंद मलहोत्रा को जानते हैं ?"

"नही।", आशुतोष ने दृढ़ भाव से कहा।

"आप जरूर जानते हैं।"

"आपको कोई धोखा हुआ है। मैं आशुतोष पटेल हूं और इस नाम के आदमी से मेरा कोई सबंध नही।"

"जाने दीजिये। आप देवीसेन को जानते है ?"

"नही, बिल्कुल नही।"

"आप सदानंद बालावलकर को जानते हैं ?"

"यह सब आप क्यों पूछकर मेरा समय नष्ट कर रहे है। मैं इनमें से किसी एक को नही जानता।"

अब उस आगंतुक ने जैसे आखिरी तुरुप का पत्ता होता है वैसा एक नाम लिया—"आप एच. आर. को जरूर जानते हैं ?"

आशुतोष चुप हो गया, उसे लगा कि कोई न कोई गहरा खोजी यहां आ पहुंचा है। इससे बचाव संभव नही। फिर भी जैसे डूबता तिनके का सहारा लेता है, वैसे मन ही मन उसने सोचा कि इस स्थिति से भी भाग निकला जाये। आशुतोष ने कहा—'क्या आपको सेठ झंगियानी ने भेजा है!'

"हां। वे एच. आर. को जानते हैं।"

"मैं तो जयमाता के आश्रम मे प्रकाशन का काम देखने के लिए आया अन्तेवासी हूं। आप मुझे तंग मत कीजिये।"

इतने में विनीता आ गई। आशुतोष ने कहा—"कैसे-कैसे लोग कहां-कहां के नाम लेकर चले आते हैं। सेठ झगियानी भी बड़े ही लोक संग्रही प्राणी हैं। इस पागल को भेज दिया। यह लापता लोगों की खोज करता-करता यहां आ पहुंचा। भाई मेरे, मैं इसे ठीक से समझा रहा हूं कि मेरा अता-पता यह है—मेरा कार्ड ले जायें, चाहें तो। मैं यहां आध्यात्मिक शांति के लिए आया हूं और आप मेरे पीछे पड़े हुए हैं, जैसे कोई मैं 'क्रिमिनल' हूं।"

वह अजनबी आदमी हंसा। उसने आस्करवाल्ड का एक वाक्य कहा—"एवरी सेंट हैज ए पास्ट, एवरी सिनर हैज ए फ्यूचर।" (हर

संत का एक भूतकाल होता है, हर पापी का एक भविष्यत्)

आशुतोष कहने ही जा रहा था कि मानो कोई दोनों हो तो ?

इतने में वह आगंतुक विदा लेकर चला गया।

21

दूसरे दिन सवेरे विनीता आशुतोष को नाश्ते पर चलने के लिए बुलाने गई तो देखा—कमरा खाली है। केवल एक चिट्ठी वहां रखी थी और उसके नीचे एक डायरी। चिट्ठी में लिखा था—"विनीता, तुम्हें मेरे लिखने में रस था। इस चिट्ठी को अपने पास रखना। यह मेरी पहचान नहीं है, न निशानी है। यह एक सर्वसंग-परित्याग की मंजिल के पथिक का बयान है। टुकडों-टुकड़ों में, अटपटा और बेतरतीब। पर शायद इसमें तुम आज के आदमी का चेहरा पहचान सको। मेरी खोज मत करना। आशुतोष ने आत्महत्या कर ली है। और उसका कोई नामोनिशां आसानी से मिलनेवाला नहीं है।"

आत्महत्या वाली बात से विनीता डर गई। चिट्ठी और डायरी तो उसने अपने झोले में छिपा ली और हवेली नं०2 में हल्ला मचवा दिया कि आशुतोष का कमरा खाली है। वह कहीं चला गया है। एक ही खुशी की बात थी कि उसने आशुतोष का एक फोटो ले लिया था अपने कैमरे से।

बहुत पूछताछ की गई। दरबान ने कहा—रात को तो कोई आदमी वहां से गया नहीं। और उसका सामान था ही क्या। दो जोड़ी कपड़े। वे तो ज्यों के त्यों हैं। हो सकता है, वह किसी दोस्त से मिलने गया हो।

जयामाता को खबर करा दी गई। उन्होंने सेठ झंगियानी को खबर दी। सेठ ने 'एच० आर०' से कहा। 'एच० आर०' ने ऊषा और प्रशान्त को बुलाया—"तुमने अधीरता से एक आदमी को, जो अपनी चगुल में पूरी

तरह आ चुका था, इस तरह से चले जाने दिया। यह ठीक नही किया। इतने बडे कलकत्ते में, इतनी सारी गाड़ियाँ छूटती हैं, इतनी बसें जाती हैं। वह फिर फरार हो गया। उसे जान पडता है ज़िंदगी से कोई मोह बचा नही है। वह आत्महत्या भी कर सकता है। कही किसी तालाब मे कूदकर डूब गया होगा। या किसी पटरी पर किसी रेल के नीचे आ गया होगा। या उसने···"

सब बहुत दुखी हुए। कई महीने बीत गये।

अपने-अपने काम में सब लग गये। ऊषा ने वे चित्र सभालकर रखे थे। वह पुन: अपने पिता के पास चली गयी। प्रशात दिल्ली मे फिर अपना बिज़िनेस देखने लग गया। मीना अघोर भैरव के पास ही थी। उसका बाप शायद वही मछुआरे का धंधा करता था और शराब मे अपनी ज़िंदगी की आखरी बूँदें निचुडकर एक तरह से धीमे-धीमे आत्महत्या कर रहा था। शीला ने शादी कर ली थी दुबारा। लीला उसके साथ ही रोज़ मिलती थी। ज़िंदगी बदस्तूर चली जा रही थी।

'एच० आर०' के लिए राव महत्त्वपूर्ण था। शेष सब बेकार थे। सेठ झंगियानी महत्त्वपूर्ण था। 'जयामाता' उपयोगी थी। ये सब 'काटैक्ट्स' थे, 'कनेक्शन' थे। औरों से क्या लेना-देना था। 'एच० आर०' एक महायंत्र की तरह था। सत्ता और संपत्ति और भ्रष्टाचार का मिला-जुला आटोमैटान। एक 'रोबो'। उसकी बला से कोई जिये या मरे?

आशुतोष और विनीता के क्या कोमल भावनापूर्ण संबंध बढ रहे थे, या टूटे थे, या डोर उलझती जाती थी या नहीं—उससे 'एच० आर०' को कोई मतलब नही था।

समुद्र को उसकी सतह पर गनबोट जा रही है या जान बचाने वाले जहाजियों की नाव—उसमे क्या लगाव होता है। उसके लिए सब समान है। क्या शार्क, क्या सीपी। क्या पनडुब्बी, क्या सबमॅरीन, क्या सैर सपाटे को पानेवाला 'याट' या माल लादनेवाला बडा जहाज़। वह अपना काम करता रहता है। 'एच० आर०' अविचलित भाव से अपनी गैंग को चलाये जा रहा था। मानो अच्छे-बुरे मे परे—उसकी एक निश्चित पहचान थी कि उसकी कोई पहचान नही थी। उसके अनेक पते थे; चूँकि वह ठिकाने

का आदमी था । आदमी नही एक बहुत बड़ा खूखार जानवर था ।

और वह बेचारा लापता व्यक्ति, एक अदना-सा, छोटा-सा इन्सान अरविंद । उसकी एक अपनी पहचान थी । उसे वह मिटाने में लगा था। जितना वह मिटाने जाता, उतना ही अपनी करनी से ही उसी मे उलझते जाता । वह अपने आपसे भागना चाहता था । जंगलों मे, समुद्र किनारे, देश मे, विदेश में—कही उसे शाति नही थी ।

दो साल बीत गये । सब थक गये । लापता लापता ही रहेगा ऐसा सबने मान लिया । सबने उसकी खोज छोड़ दी ।

पर कहानी यहां खत्म नही हुई ।

22

शिमला के पास एक स्कूल मे एक मास्टर छोटे-छोटे बच्चों को पढाता और बहुत चुप्पे मे एकान्त जिंदगी बिताता था । एक ढाबे में वह खाने जाता । कोई नौकर उसने नही रखा था । वह पहाडी ढंग की टोपी और वैसा ही कुर्ते के ऊपर कोट और चूड़ीदार पायजामा पहनता । उसके कंधे पर एक झोली रहती, उसमे कुछ कागज, कुछ किताबें, कुछ पैसे । वह सदा एक वाकिंगस्टिक साथ रखता था । उसका नाम था शिवलाल ।

मास्टर की बड़ी ख्याति थी । मन लगाकर पढाता था । साहित्य और भाषा उसके प्रिय विषय थे । अंग्रेजी-हिंदी दोनों अच्छी तरह जानता था। पोस्ट आफिस में उसने कुछ पैसे जमा कर रखे थे । उसका कोई संगी-साथी नहीं था । खेलकूद उसे पसंद नही थे । कभी-कभार वह शहर चला जाता तो सिनेमा या नाटक देख लेता था ।

शिमला के आदिवासियों की खोज करने के लिए आये एक विदेशी से उसकी दोस्ती हो गई । वह शिवलाल को 'फिलासफर' कहता था। और

यह इस विदेशी बिल को 'टूरिस्ट'। दोनों में काफी बातें होती। कई बेकार के विषयों पर। कई ऐसी जो गहरा अर्थ रखती थी।

बिल शिमला और आसपास के पहाड़ी इलाके के लोगों के धर्म-विश्वासों में शोध कर रहा था, और उसे स्थानीय भाषा समझनेवाला 'दुभाषिया' चाहिए था। यह शिवलाल में उसे मिला।

एक दिन बिल 1911 में सी० सी० गार्बेट नाम के मंडी राज्य के सेटलमेंट आफीसर की कहानी बताने लगा—"चचियोट जिले से एक कामरू नाग का मंदिर है। यह पहाड़ी देवता बहुत ही विशिष्ट सिद्धि वाले *माने जाते हैं। वहां किसी शूद्र को प्रवेश नहीं दिया जाता। तीर्थयात्री* चांदी के सिक्के और गहने उस मंदिर के पास के तालाब में फेंकते थे। तांबे के सिक्के सब पुजारी रख लेते थे। मैंने सुझाव दिया कि ये पैसे पानी में तालाब के तल में पड़े रहते हैं, इनसे तो अच्छा है कि उन्हें निकाला जाये और किसी अच्छे सामाजिक उपयोग मे लगाया जाये। पर पुजारियों ने इस बात का विरोध किया। कामरू नाग के उपासकों ने भी बड़ा विरोध किया। मंडी के राजा से बिदा लेकर गार्बेट नीचे आये। रास्ते में बड़ी भारी वर्षा हुई। गार्बेट ने कोई पहाड़ी फल खा लिया था। उससे उसे अतिसार हो गया। सब लोगों ने कहा कि यह सब देवता का ही प्रकोप है। उसके चढ़ाये गये चढ़ावे को पानी में से निकालने का सुझाव यह विदेशी विधर्मी क्यों देता है?..."

और, "वैसे तो किसी भी मंदिर में बीड़ी-सिगरेट पीते हुए अंदर *जाने नहीं दिया जाता, पर मंडी के पुराने महल में एक बाबाकोट नामक* देवता है। उसके पास सदा एक हुक्का जरूर रखा हुआ रहता है। यह देवता धूम्रपान का शौकीन है। यहां उपासक और भक्त देवता को प्रसन्न करने के लिए तंबाकू चढ़ाते हैं। यह विरोधाभास तुम कैसे समझाते हो, फिलासफर?"

शिवलाल कुछ मुस्कराये। फिर गंभीरता से बोले—"टूरिस्ट, तुम भारत की देवता-परंपरा का यह परस्पर-विरोधी लगनेवाला चमत्कार नहीं समझ सकोगे! भारत कई तरह के सूत्रों का बुना एक विशाल पट है। शिव प्राच्य देवता हैं। वे स्वयं विजया का सेवन करते हैं। उन्हें विषैला

धतूरे का फूल चढाया जाता है। वह गले में हलाहल धारण करते हैं। अर्थ···देवता···मालायें···यह रुद्र मूर्ति, यह 'शिश्नदेवता' जिसकी वैदिकों ने निंदा की थी, समाहित कर लिया गया। धीरे-धीरे शिवोपनिषद् और शिवपुराण लिखे जाने लगे।"

"लेकिन ये सिक्के? यह देवताओं को चढ़ाया जाने वाला सोना, चांदी, आभूषण? क्या देवता यह सब चाहते हैं? या यह सब पुरोहितों की चालाकी है?"

"ऐसा है बिल, जिसे हम सर्वश्रेष्ठ, सर्वाधिक प्रिय मानते हैं, उसके आगे सबसे मूल्यवान धातुएं—सोना और चांदी, हीरे और जवाहरात क्या हैं? क्या इन जड़ वस्तुओं से अधिक मूल्यवान कोई वस्तु जीवन में नहीं है, जिसे ये सब चढाये जा सकें।"

"तुम्हारे इस शिव के नाम भी अजीब-अजीब हैं। यह पचानन या पांच सिरों वाला क्यों बताया जाता है। तीन आखों और सप्तमातृकाओं या, नवमातृकाओं में यह विषम संख्याओं का क्यों विधान है? नवरात्र और पचमी और सप्तमी की पूजाओं का विधान क्यों?"

"मैं ज्यादा नहीं जानता टूरिस्ट। पर आदिम मनुष्य को पाच तत्त्व बहुत भय-विस्मय मे डालते रहे हैं। उसे दो हाथ, दो कान, दो आंखें, दो ओंठ, दो पांव समझ में आते रहे हैं, पर यह तीन क्या है? तीन तिगाड़े बात बिगाडे! 'त्रयाणां धूर्त्तानां' 'न गच्छयेत् 'ब्राह्मणत्रयम्' 'त्रिकाष्ठम् 7तिगड्डम7तिकड़म; न तीन में, न तेरह में; तीन-पांच मत करो— पचासों ऐसे त्रिशूल हैं। पांच भी जुड़ जायें तो पंचायत है, पाच उंगलियां हैं, पच फ़ैसला है, भूत को भगाने का पंचाक्षरी मंत्र है। पर न जुड़े तो 'पांचक' है···"

बिल ने बताया।

"पंचक्रियाकारी शिव के सृष्टि, पालन, संहार, निग्रह, अनुग्रह ये पांच शक्तियां या प्रक्रियाएं बताई गई हैं। शिव जोगी है, हाथी की खाल ओढता है—कृत्तिवास है; गजसंहार है। वही कालसंहार है, शिलरेश्वर है, पशुपति है, भिक्षाटन मूर्ति है।"

लाहौल के आदिवासियों में लिंग और सर्प की पूजा बहुत सामान्य

है। लिंगाकार पत्थर को मक्खन या तेल से चुपड़कर हर गांव के मंदिर के बाहर रखा जाता है। खश शिवपूजक थे। केदारनाथ का मंदिर खशिया है। पहाड़ों में शिवमंदिरों के पुजारी ब्राह्मण होना जरूरी नहीं।

"शिव के साथ-साथ देवी की पूजा भी पहाड़ों मे बहुत प्रचलित है। देवी दुःख, रोग, विघ्नों को दूर करती है। वही शीतला और मरी माई कहलाती है। वही शक्ति है, भुवनेश्वरी है। कुमारस्वामी ने प्रकृति के 'कलायें रूपांतरण' में कहा कि वह 'नये सूर्योदय जैसी' लावण्यमयी, विजया, प्रार्थना के दोषों को हरण करनेवाली, चमचमाते मुकुट को और कर्णभूषणों को धारण करने वाली है। वह परम उदार और धन्य-धान्य समृद्धि देनेवाली आदि जननी है।"

"महिषासुर का डर सारे पहाड़ मे ऐसा छाया है कि गुरखा भी भैंसे की बलि देते हैं। कुल्लू के दशहरे में पहले ऐसी ही बलि चढ़ाई जाती थी। मंडी जिले के करसोग तहसील मे काओ गांव में हर साल एक मेला होता है जिसमे भैंसा बलि मे दिया जाता है। बगी या अठवार उत्सव मे, जुलाई महीने में, गढवाल मे भैंसे को एक झटके मे नही मारते। उसे जख्मी करके छुट्टा छोड़ देते हैं। गांव वाले लोग उसे बल्लम और भालों से मारते हैं। उसका जो खून खेतो मे छिटकता है, उसे वहा के आदिवासी खेतों के उपजाऊ बनने का वरदान मानते हैं। उस भैंसे को पहला वार करनेवाला बहुत भाग्यवान माना जाता है। उन लोगों मे इसके लिए झगड़े होते हैं।

"शिमला मे कोटगढ के पास कई चट्टानो पर शिवशक्ति के चिह्न अंकित हैं। कुल्लूमनाली, लाहौल और लद्दाख तक वे फैले है। नवरात्र मे हर दिन नये कुमारी की पूजा होती है। कुछ लोगों में ललितापंचमी को पांच कुमारिकाओं की पूजा होती है।

"वैसे पहाड़ों में नवदुर्गा के हर दिन नये-नये नाम होते है। पहले दिन मधु-कैटभ को मारनेवाली महाकाली, दूसरे दिन महिषासुरमर्दिनी, तीसरे दिन चंडमुंड को मारनेवाली चामुडा। चौथे दिन रक्तबीज का रक्त चूसने वाली काली। पांचवें दिन नंदा, जो योगमाया बनी। छठे दिन रक्तदंती। लोगो को अकाल से बचाती है वह सातवें दिन। आठवें दिन दुर्गा, अरुण

राक्षस का नाश करनेवाली लाभ्रमरी नौवें दिन। दसवें दिन दशहरा। अष्टमी को उपवास और बड़े भोज होते हैं। उसी दिन बड़ी बलि भी दी जाती है।

"जैसे शिवशक्ति का, वैसे ही पहाड़ों में सांप पूजा का बड़ा माहात्म्य है। शेष, तक्षक, वासुकी, वज्र, दशन, करकोटक, केम्मली, शंखू, कली उसके नाम हैं। सर्पराज को दूध, मधु और बकरे चढ़ाये जाते हैं। किन्नर, किरात और नागों की यह भूमि। नाग पहले जल देवता रही होगी। पीपल के चौंतरे के पास उसका निवास है। मंडी के पास नागाचल का मंदिर है। रिवलसर तालाब में भी उसके बारे मे ऐसा ही मिथक है। कामरू नाग सरोवर के पास एक ऐसा ही मंदिर है। श्रावण शुक्ल पंचमी को नाग देवता की पूजा होती है। कश्यप की पत्नी कद्रू से पैदा हुई ये संतानें। इस बिरूरी पंचमी को शिव की पूजा की जाती है। जिसके सिर पर कई नागों का मुकुट होता है। दीवारों पर पांच, सात या नौ नाग बनाते हैं। मंडी और कांगडा में सफेद चूने से गोबर-लीपी दीवारों पर बनाते है, तो गढ़वाल मे चंदन या हल्दी से। यहां धूप जलाया जाता है और भुने हुए चने चढाये जाते हैं। इस नागपंचमी के दिन हल चलाना मना है। दीवाली के बाद की नाग-पूजा मे गोबर से बना एक नाग पूजा जाता है। उस पूजा के दिन अगर कोई सांप आ गया तो उसे 'निउगरा' कहते हैं, और उसे अपशकुनी माना जाता है और मार दिया जाता है। कामरू नाग की नाचन में पत्थर की मूर्ति है और मंडी में सनोरवादी में एक मदिर है। शिमला और सिरमौर में 'महुन' नाग को बड़े आदर से पूजा जाता है। सोलंगवादी, ऊपरी विआसवादी, सर्वरीवादी, बजीरी-रूपी, सराज जैसे कुल्लू की जगहों मे असंख्य नाग-मंदिर हैं। दरवाजे, देहरी आदि पर नाग उत्कीर्ण हैं, पत्थरों में, लकड़ी में, लकडी पर लोहे के बने नाग कीलों से ठुके हैं। कश्मीर में 'अरब वन' में कई नाग-पूजक पहुंचते थे। कुगूरी गांव के पास चंबा में, केलांग नाग का मंदिर है। इस नाग ने वहां एक जगह दिखाई थी, जहां खोदने पर चश्मा निकल आया था और लोग अकाल से बच गये थे। चंबा के राजा रामसिंह ने एक अष्टधातु की नाग प्रतिमा वहां लगवाई।

"नाग से ही संबंधित है गुग्गा-पूजा। कांगड़ा, मंडी, बिलासपुर के जोगी, नाथ और गारुड़ी 'गुग्गा' को देवता मानते हैं। यह गुग्गा घोडे पर बैठा होता है। ज्वालामुखी से देहरा जाते हुए ध्वाला गांव मे एक प्रसिद्ध गुग्गा प्रतिमा है। वह बिना सिर के लड़ता जाता था, ऐसी आख्यायिका है। देवराज नामक राजपूत राजा की दो रानी थी बचला और कचला। उन्हें बच्चा नही होता था। सो बचला गोरखनाथ के मंदिर गई। उन्होंने कहा, अगली बार आना तो वरदान दूंगा। कचला ने यह बात सुनकर बचला का रूप ले लिया और पहुंच गई। गोरखनाथ ने एक फल उसे दिया। दूसरे दिन बचला पहुंची। गोरख ने उसे भी फल दिया। बचला ने आधा फल खाया। आधा अपनी घोडी को दिया। कचला को लडकी हुई गुग्गी और बचला को पुत्र हुआ गुग्गा…"

ऐसी कितनी कहानियां बिल ने घूम-घूमकर जमा की थी। शिवलाल उस विदेशी की यह अद्‌भुत लगन, संस्कृति के आदिम स्रोतों के अध्ययन के प्रति निष्ठा देखकर—चकित हो जाता था। बिल के पास कई साधन थे—टेपरेकार्डर, कैमरे और क्या-क्या नये साधन!

शिवलाल और बिल में कभी-कभी इस बात पर बहुत बहस भी हो जाती थी।

"बिल, तुम हमारे देश के अंधविश्वास और प्राचीन जादू-टोने, ओझाइती मे इतनी रुचि क्यों लेते हो? क्या तुम्हारा यह कहना है कि भारत एक बहुत पिछड़ा हुआ देश है?"

"किसी चीज में विश्वास या अविश्वास से ही कोई देश पिछड़ा हुआ कैसे हो जाता है। हम सिर्फ यह कह रहे हैं कि तुम्हारे देश की सभ्यता बहुत पुरानी है।"

"सबसे पहले तो यहां आर्य आये, या बसते थे पहले से ही।"

"नहीं, सबसे पहले यहां आदिवासी थे। फिर द्राविड लोग आये। इन सब अनार्यों के बाद आर्य।"

"पर आर्य संस्कृति ने इन सबको अपने अंदर समो लिया।"

"उन्हें नष्ट करने की कोशिश की। उनकी पहचान मिटा दी।"

"क्या ये दोनो बातें एक ही है? तुम आर्यों को आक्रामक और दूसरों

की अस्मिता को खा जानेवाला कह रहे हो।"

"मैं नही कह रहा हूं। इतिहास यह बताता है। किसी समय मत्स्य, कूर्म, वराट, सिंह किसी-किसी जाति के बड़े प्रतीक थे। बाद मे उन्हें अवतार बना दिया। उनके आसपास पुराण वृत्त लिये गये।"

"नही बिल, तुम हिंदू नही हो, इसलिए इस सर्वग्राहिता को समझ नही पा रहे हो। यह कितनी विशाल और विश्वव्यापिनी दृष्टि थी।"

"क्या अपनी पहचान खो देना कोई भी पसंद करता है।"

"क्यों नही ? बच्चा बच्चा नही बना रहता। नौजवान नौजवान नहीं बना रहता। बूढ़ा सदा बूढ़ा नही रहता तो क्या एक अवस्था दूसरे की पहचान को मिटाने का क्रम है या विकास का ?"

"बचपन का भोलापन तो खो ही जाता है, इस क्रम मे। जवानी का जोश भी ज्यो का त्यो नही बना रहता। तो यह कालक्रम से होने वाले नैसर्गिक परिवर्तन हैं। पर यहा जान-बूझकर आपने-औरो की मान्यताओं पर अपनी मान्यता का आरोप किया। कलम लगाया।"

"क्या, योरोप और अमरीका में ऐसा नही होता ?"

"वहा एक पौधा उखाड़कर दूसरा लगाया जाता है। यहां तो पौधे का रूप ही बदल दिया जाता है। रंग ही बदल दिया जाता है। मैंने सुना है रवीद्रनाथ ने शातिनिकेतन में आपके पेड़ की एक लता बनाने का यत्न किया।

"हिन्दू रूपांतरण नही, कई संस्कृतियों का एक संगम स्थल है। एक समुद्र है, जिसमें कई नदिया आकर मिलती हैं। एक बड़ा पुराना पहाड़ है, जिस पर बर्फ जमा चला जाता है…जमा चला जाता है।"

23

विनीता के पास बचा था आशुतोष का एक फोटो और वह डायरी। डायरी में समुद्र के साथ-साथ हिमालय पर भी बहुत-सी सामग्री जमा थी। विनीता जयामाता के उस आश्रम में काम करते-करते एक दिन यह विचार करने लगी कि हो सकता है वह हिमालय की ओर चला गया हो।

हिमालय लोगों की पहचान को छिपाने का बहुत अच्छा स्थान हो सकता है। और उसे ही कई लोग आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के लिए चुनते हैं।

तो क्या आशुतोष किसी तीर्थस्थान में गया होगा? हरिद्वार, ऋषिकेश, बद्रीनाथ, केदारेश्वर या अन्य कोई स्थान?

नहीं-नहीं! आशुतोष के मन में सगठित, सस्थावादी धर्म के प्रति कोई श्रद्धा नहीं थी। वह जयामाता के आश्रम में भी इस सारे ढोंग-धतूरे से बहुत बचता था, दबी जबान से उसकी निंदा भी करता था। चमत्कार में उसका कोई विश्वास नहीं था। वह किसी सिद्धि या शक्ति की शीघ्र प्राप्ति में भी नहीं जुटा था, तो फिर वह कहां गया होगा? हिमालय में?

अलमोड़ा?

नैनीताल?

मसूरी?

देहरादून

या दार्जिलिंग, कर्सियांग, कलिङ्पोङ्, या नेपाल की सीमा पर, या तिब्बत की ओर?...

हिमालय इतना बड़ा है। उसमें एक छोटे से मानव-प्राणी का क्या ठिकाना है?

उसकी डायरी में निकोलस रोरिक के बारे में बहुत-सी बातें लिखी हुई थीं। उसे चित्रकला से प्रेम था ही।

डायरी में लिखा था—

"निकोलस रोरिक रूस में सेंट पीटर्सबर्ग में 9अक्टूबर, 1874 को पैदा हुआ। वह वही एकेडेमी आफ आर्ट मे, फैकल्टी आफ ला और इंस्टिट्यूट आफ आर्कियालोजी में पढने को भरती हुआ और उसने जमकर अध्ययन किया। विदेशों में भी वह आगे पढ़ने के लिए गया। रूस, योरोप, मध्य-एशिया, मंगोलिया, तिब्बत, चीन, जापान का उसने भ्रमण किया। पर कहीं शांति नही मिली। अंत मे वह भारत मे आया और यही बस गया।

चौवन बरस की उम्र में उसने 1928 में पहली बार हिमालय देखा। और उस नगाधिराज के विराट सौंदर्य और गरिमा ने उसे कीलित कर दिया। वह आजीवन उस भव्यता और दिव्यता को कलम और कूंची से आंकने की कोशिश करता रहा। हज़ारों बड़े-बडे चित्र उसने बनाये। पर उनसे अघाया नही। रोरिक ने लिखा—"विश्व में ऐसा प्रकाश, ऐसी आध्यात्मिक तृप्ति और कही नही है। जैसी हिमालय के इन मूल्यवान हिमखंडों मे है···यह भारत का मुकुटमणि है। इसकी महानता का संदेश मैं विश्व को दे रहा हूं।"

कुल्लू की वादी में उसने जीवन के अंतिम बीस वर्ष बिताये। हिमालय की अनन्तता और अतुलनीयता से मोहित ऋषि रोरिक उसी के मनन और चिन्तन, उसी के निदिध्यास और साधना में डूब गया।

यही उसने अपनी ये अमर कृतियां चित्रित की, जिनके नाम दिये, स्मरण करो—जीवन की बूंदें, संघर्ष के मोती, मैत्रेय के चिह्न, पूर्व की पताकाएं, तिब्बत के किले, आखिरी देवदूत, शुभ शकुन, मानवी कर्म, शापित नगर, अद्भुत आलोक, सांपों का नगर—जैसे पुराने चित्र जो प्रथम महायुद्ध से प्रभावित थे, वे पीछे छूट गये। अब रोरिक बनाने लगे—संत सेर्गियस, सांक्टा प्रोटेक्टरिक्स, संत जैसे मृत, युद्ध-दाता, रिग्देन ज्येपो का आदेश, श्रीकृष्ण, कल्कि अवतार आदि। वह सत्-चित्, आनंद की उपासना में डूब गये।

रोरिक ने कितनी सारी किताबें लिखी। 1914 में उनकी संपूर्ण रचनावली छपी थी। पर बाद में मोर्या के फूल (1921), गुरु (1925) अटसं हिमालय (1929), आशीर्वाद के पथ (1929) प्रकाश का राज्य (1929), एशिया का हृदय (1929), शांपाला (1930), आग का दुर्ग

(1933), भविष्य के द्वार (1936), सुंदर एकता (1946), हिमालय—प्रकाशक आवास (1947), हिमवंत (1947) प्रसिद्ध हैं। (कविताए) रहस्यवाद पर लेख, विश्वशांति का प्रचार कितने-कितने विषय हैं।

कुल्लू में उसकी समाधि है। उस पर लिखा है—

"13 दिसंबर, 1947 में निकोलस रोरिक, भारत के महान रूसी मित्र को यहां दफनाया गया।"

उसी समय में नई दिल्ली में जवाहरलाल नेहरू ने उनके चित्रों की बड़ी प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए उन्हें अपनी श्रद्धा अर्पित की थी।

1920 में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लंदन से उन्हें पत्र लिखा—'तुम्हारे चित्रो ने मुझे बहुत अन्तस्तल तक छू लिया है।' गोर्की ने कहा कि 'वह सबसे बड़े अन्तर्देशीय (हुंरियुशनिस्ट) थे।"

उन्होंने सात हजार से ऊपर चित्र बनाये। उनमें से कुछ ही संग्रहालयों में हैं।

पता नहीं क्यों विनीता को लगा कि हो-न-हो, आशुतोष इसी महर्षि की तलाश में गया होगा। उसकी डायरी में यही अंतिम पृष्ठ थे—रोरिक के बारे में···

विनीता भी कुल्लू पहुंची—कैमरा लेकर। दशहरा की छुट्टियों मे।

वहा प्रवास मे उसकी भेंट एक नवयुवक से हो गयी। वह भी संयोग की बात है। वह राजनैतिक कार्यकर्ता था। उसने अपना नाम कामरेड वंशीलाल बताया। वह शिमला के कुलियों की यूनियन का काम करता था। पढ़ा-लिखा था और बहुत समर्पित आदर्शवादी जान पडा।

विनीता ने उससे धर्म पर बहस करना व्यर्थ समझा। पर राजनीति के बारे मे उसके मन में कई शंकाएं थी। उसने पूछा—

"आपने रोरिक का नाम सुना है?"

"क्यों नही? बड़े आर्टिस्ट थे।"

"रूसी थे। भारत-प्रेमी थे। वे रूस लौटकर क्यों नही गये?"

"यह तो उनकी मर्जी की बात है। पर मुझे लगता है वे जवाहरलाल

नेहरू के मित्र थे। उन्होंने विश्वशांति के लिए बड़ा काम किया।"

"क्या आपको उनके चित्रों से आध्यात्मिक शांति नहीं मिलती?"

"आपकी भाषा हमारी भाषा से नहीं मिलती-जुलती। हम ऐसी आत्मा और शांति में विश्वास नहीं करते, जिसमें लाखों-करोड़ों भूखे-नंगे तड़प रहे हों और आप अपनी आसपास की दुनिया से आंखें मूंदे हुए हों। यह शुद्ध पलायनवाद है।"

"क्या आदमी सिर्फ पेट है, और जानवर है?"

"सबसे पहले वह यही है।"

"आपने आदिवासियों को नाचते-गाते देखा है, सुना है? वे चित्र बनाते हैं। खुश रहते हैं, अधनंगे रहकर भी।"

"वह प्रकृति के साथ एकाकार हैं, या दूसरे शब्दों में हमारी तथाकथित सभ्यता से कटे हुए और दूर हैं।"

"पर औद्योगिक नगरों में, यंत्र सभ्यता ने आदमी को क्या ज्यादा सुख दिया है?"

"यह बहसतलब बात है। पर इतना सच है कि भारत की आज की हालत में मुझे कोई रास्ता नहीं नज़र आता, सिवा क्रांति के—।"

"क्यों?"

"कोई भी पैसेवाला अपनी पूंजी गरीबों में बांटकर देना नहीं चाहता वह परोपकार के नाम पर मंदिर बनवा देता है। लग्गी से पानी पिलाना चाहता है।"

"पर यह काम तो नेताओं का है। वे आर्थिक वितरण ठीक से करें। वे गरीबी हटाने का उपाय करें। उचित वैज्ञानिक शिक्षा दें।"

"नेता कहां से आते हैं? किस वर्ग से आते हैं?"

"क्यों? बहुत से नेता बहुत गरीब तबके से आगे आये। लालबहादुर शास्त्री या आंबेडकर, पी० सी० जोशी या जगजीवनराम, शेख अब्दुल्ला या मातंगिनी हाजरा क्या बहुत अमीर घर से आये थे…।"

"सवाल इस बात का नहीं है कि उनके पिता या प्रपिता गरीब थे या अमीर। सवाल इसका है कि वे किस वर्ग का हित साध्य करते हैं।"

विनीता ने देखा कि इस आदमी से बहस का कोई फ़ायदा नहीं है।

वह घूम फिरकर उसी मूल स्वर पर आ जाता है तो उसने विषयांतर किया—

"कहिए, वंशीलालजी, यहां आदिवासियों में भी अन्य कोई काम करते हैं?"

"हम शहरी मजदूरों में काम करते हैं। होटल के कर्मचारी, छोटे किरानी या क्लर्क, मास्टर सब में हम यूनियन बनाना चाहते हैं...।"

"विचार तो अच्छा है। पर अभी तो मैं यहा के आदिवासियों के बारे में जानना चाहती थी।"

"हां, एक अमेरिकन स्कालर आया था। वह शिमला के आसपास कई जंगली बस्तियों में गया। आप उससे मिलिये।"

"कहां रहते हैं वे?"

"शिमला के कार्लटन होटल में।"

"अच्छा, मैं जाऊंगी।"

विनीता कार्लटन होटल पहुंची तो बिल हिमालय की लोककथाओं और लोकगीतों में डूबे हुए थे।

विनीता के पास कैमरा देखकर उन्होंने पूछा—"आपको भी फोटोग्राफी का शौक है?"

"हां।"

"और क्या शौक है?"

"मुझे लोकगीत और लोककथाएं बहुत अच्छी लगती है।"

"तो आपके पास समय है?"

"क्यों?"

"मैं ये दो गीत और दो कहानियां जो पहाड़ों से प्राप्त हुई हैं, सुनाता हूं। इसका अर्थ मैंने अंग्रेजी मे ठीक किया है या नहीं, यह आप देखें। मैं भारतीयों की भावनाओं को दुखाना नही चाहता।"

बिल ने सुनाना शुरू किया। पहला गीत किन्नर जाति का भिक्षुणी-गीत है—

ओमो लामा लंगामा, शूम कोशांग दुखी दोम्याता सुखी
मर्नरिंगरन चौहकू भूरे, बौन-यूगस चौहक बागे

परीयां विमतिगमंग, घूम बाशांग सुखी दाम्याता दुखी
धोरवबबोन धन्घेलामीक, सारेजन जालू कोयो

उसने अर्थ पढ़कर सुनाया—

"अगर भिक्षुणी बनोगी तो तीन साल तक दुख अवश्य उठाना पड़ेगा। उसके बाद तो पांचों उंगलियों घीमे हैं। नारी जाति में भी तुम्हारा बड़ा मान होगा, लोक मे आदर होगा। लोग तुम्हारे चरणों मे शीश नवायेंगे।"

"और अगर शादी करोगी तो तीन साल तो अवश्य सुखी जीवन काटोगी। उसके बाद गृहस्थ जीवन मे फसकर अपना सुख भूल जाओगी।"

विनीता ने कहा—"कितनी बढिया बात कर दी है। त्याग और भोग का सार चार पंक्तियो मे निचोडकर रख दिया। वाह!"

बिल ने कहा—"एक और गीत सुनो। प्रेम की महिमा का गीत है। यह भी किन्नर-देश की जनजाति का गीत है—

जूमिग संगियू तंगेस, रंगदानि चलशे
रंगदानि वास्वयड दानि लि मेदान
दानिलो मेदान जंगल लि मंगल
जंगल लि मंगल थारंग लि तिथंड
थारंग लि तिथंड, न्यातउ लि कुलंड
न्यानउ लि कुलड, कुलड लि वायु
आफर वास्वयड छिरप फारक दुग्यो।"

इसका अर्थ है—"नायिका अपने प्रिय से मिलने जाती है तो रास्ते में अनेक विरोध का जो अवरोध का कार्य करते हैं शांत और बौने हो जाते हैं। बड़े-बड़े पहाड़ टीले बन जाते हैं, उनकी ऊँचाइयां झुक जाती हैं; जंगल मे मंगल की संभावना बढ़ जाती है और घर मे मंदिर तथा नदियां छोटे तालाब का रूप धारण कर लेती हैं। मि[illegible] अवरोध के क्षण टलते चले जाते हैं।"

विनीता ने कहा [illegible] जाना है। [illegible] तो और विस्तार से बातें [illegible]

जाते-जाते उसका ध्यान टेबल पर बिल के साथ एक भारतीय मित्र के फोटो की ओर गया और वह ठिठक गई। उसने पूछा—यह आपके साथ कौन है?

"मास्टर शिवलाल है।"

"मास्टर शिवलाल कौन?"

"वही हमारी सहायता करने वाला दुभाषिया है। बहुत होशियार नौजवान है। बहुत दुनिया घूमा हुआ है। अंग्रेजी भी अच्छी जानता है।"

विनीता को फोटो देखकर उस चेहरे में आशुतोष का आभास हुआ। शिवलाल कहीं आशुतोष ही तो नहीं। उसने तै किया कि अगली बार वह इस बात का पक्का पता लगायेगी।

विनीता दूसरे दिन बिल के पास आई तो अपने साथ में उसने खींचा हुआ आशुतोष का फोटो भी ले आई।

पहले तो उसे बिल से दो पहाड़ी लोककथाएं सुननी पड़ीं। अबकी बार वह तुलनात्मक रूप से हिमालय में बसी अन्य जनजातियों, जैसे मैतेई 'कांगलेहरोल' (लोककथाओं) में से दो कहानियां पढ़ी:

खुमन नामक स्थान में खुमन मोगंबा अचोबा नामक व्यक्ति रहता था। वह सुन्दर युवा था और अपनी ताकत के लिए मशहूर था। वह एक छोटी-सी पुष्करिणी का मालिक था। एक दिन उसने देखा कि पुष्करिणी का जल गन्दा हो गया है। उसके पश्चात् कई दिनों तक क्रमशः उसने देखा कि पुष्करिणी का जल बराबर रात के समय गन्दा हो जाता है। वह बहुत क्रुद्ध हुआ और गन्दा करने वाले को दंडित करने की उसने सोची। एक रात को झाड़ियों के पीछे छिपकर उसने पुष्करिणी पर दृष्टि रखी। अर्धरात्रि को उसने देखा कि आकाश से सात 'हैलोई' या परियां उड़ती हुई आईं और उन्होंने पुष्करिणी में उतरकर तैरना और खेलना शुरू किया। वह झाड़ियों के पीछे से दौड़ता हुआ आया और उसने एक 'हैलोई' को पकड़ लिया।

परियों ने बड़ी विनतियां की, मनुहार की, इसरार की कि वह उन्हें

छोड़ दे। पर अचौवा नही माना। तब परियों ने कहा कि परी को छोड़ देने के बदले में वह जो चाहे उसे वे देने को तैयार हैं। अचौवा ने कहा कि वह सबसे छोटी और सुन्दर हैलोई या परी से विवाह करने पर ही अन्य परियों को छोड सकता है। परियां इस पर राजी हो गयी और उन्होने आशीर्वाद दिया कि हैलोई से विवाह कर वह सौ वर्ष तक जियेगा।

अब अचौवा का कुछ समय तो सुख से बीता पर परी तो परी होती है। वह अपनी आदत से बाज नही आती थी। वह मनुष्य जीवन की परिधि मे नही रह सकती थी। जब अचौवा काम से लौटता तो वह परी को खेलती, गाती या बादलों के साथ उड़ती हुई पाता था। परी से उसने अनुरोध किया कि वह साधारण मनुष्यों की तरह रहे, पर वह नही मानती थी।

एक दिन वह घर छोड़कर जाने लगा कि उसने परी से विवाह करके बहुत बड़ी भूल की है। उसने अपने घर का परित्याग किया और वह किसी अनजान स्थान पर चला गया। सौ साल पूरे नहीं हुए थे। इसलिए परी ने उसे बहुत ढूढा, पर वह अचौवा को कही नही पा सकी। इसलिए वह पुनर्जन्म की प्रतीक्षा करने लगी।

"बाद में उसका जन्म पुरँग्वा नाम से हुआ और उसकी पत्नी वही परी न्यांग खारीमा बनी?"

बिल ने टिप्पणी की—"क्या बढिया रूपक है मनुष्य का आदर्शों के पीछे जन्म-जन्मान्तर भागने का। वह सदा दुखी ही रहता है।"

विनीता ने कहा—"मनुष्य के असमाधान का कारण आपके आदर्श नही, बल्कि उनकी अपूर्णता है।"

"जो भी हो वह परियो के पीछे सदा से भागता आ रहा है, और यह पाता है कि वह पुरूरवा या लेडा के पीछे भागने वाले नायक की तरह अकेला ही है और वैसा ही रहेगा।"

विनीता—"और उस स्त्री को भी तो यही लगता होगा। वह देवता जिसे समझी थी, वह मिट्टी का पुतला निकला।"

बिल ज़ोर से हंस पडा और इस तरह की एक और बच्चों के लिए मैतेई लोक-कथा सुनाई, जिसमे आदमी और बन्दर दोनो की चतु-

राई का, अपने-आपको एक-दूसरे से अधिक चतुर समझने का किस्सा था—

"एक बार एक वृद्ध दम्पति अपने खेत मे अरवी बो रहे थे। इतने में कुछ बन्दर आये। उन्होंने कहा कि अरवी बोने की ऐसी विधि उन्हें बतायेंगे जिससे अरवी की फसल शीघ्र और अच्छी हो। वृद्ध दम्पति राजी हो गये। बन्दरों ने उन्हे बताया कि अरवी के बीज के ऊपर वाले हिस्से को जमीन के ऊपर गाड़ा जाये और पत्ते वाले भाग को जमीन के नीचे। कृषक दम्पत्ति ने ऐसा ही किया। रात में बन्दरो ने जमीन के ऊपर निकले अरवी के पत्तों को खा डाला और जगली अरवी के पत्तो को उनके स्थान पर गाड़ दिया। सुबह कृषक दम्पति अरवी के पत्तो को इतना जल्दी बढा हुआ देखकर बहुत आनन्दित हुआ। उन्होंने बन्दरों को सबक सिखाने की सोची। कृषक कपडा ओढकर हाथ मे डंडा लेकर लेट गया और उसकी पत्नी चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगी। वह कहने लगी—

'पाहन साड़ना सिकिबा, नाइटेन चाडना हल्लाकू'

अर्थात् 'अरवी खाकर मर गया। कुछ खाकर जीवित हो जा'। "मैतेई लोग मानते हैं कि कद्दू खाने से मुह की खुजली दूर हो जाती है।)

उसका रोना सुनकर बन्दर फिर आ गये। उन्होने बुढिया को ढाढस बधाया कि वे वृद्ध का दाहकर्म करायेंगे। वे ज्यों ही वृद्ध को उठाने लगे कि वह अचानक उठ खड़ा हुआ और उसने डंडों से बन्दरों की अच्छी पिटाई की।"

विनीता हंस पडी। सब जगह मनुष्य की चतुराई किस तरह से काम आती है। हमारे लोक-साहित्य में कितना कुछ इस बारे में लिखा भरा पड़ा है।

फिर उसने शिवलाल के बारे में जानना चाहा। बिल ने बताया कि हां, वह उसे ले जायेगा और मिलायेगा। शिवलाल को भी पहाडी लोगों के धार्मिक विश्वासों के बारे में शोध करने मे बड़ी रुचि है।

विनीता ने पूछा—"क्या शिवलाल ने अपने पूर्व जीवन के बारे मे

कुछ बताया ?

बिल बोला—"नहीं।"

विनीता—"आपने जानने का यत्न भी नही किया।"

बिल—"हम किसी के निजी जीवन को ज्यादा नही जानना चाहते। अपना-अपना जीवन है। कोई छिपाना चाहता है, कोई खोलकर बताना।"

विनीता—"यह भी ठीक ही है।"

"बिल—"पर आपकी उसमें दिलचस्पी क्यों है ?"

विनीता—"मुझे लगता है कि वह मेरा परिचित है।"

बिल—"सो कैसे ?"

विनीता—"उसका चेहरा बहुत कुछ मेरे एक परिचित से मिलता-जुलता है।"

बिल—"कई बार दो चेहरे बहुत एक-से होते हैं।"

विनीता—"अच्छा ? पर मैं गलती नही कर सकती। मेरे पास यह छायाचित्र है। देखिये।"

बिल ने इस चित्र को उसके कमरे में रखे चित्र से मिलाया और काफी समानता दिखाई दी। हां, मूंछें जो उसने उस समय रखी थी वे वहां नही थी।

यह तै हुआ कि दूसरे दिन बिल उसे शिवलाल के पास ले जायेगा।

वह जब पहुंचे तब शिवलाल के साथ कामरेड वंशीलाल बैठा था। बिल हमेशा सोचता था कि दोनो में क्या समानता है ? क्यों दोनो इतना तर्क करते हैं ?

कामरेड वंशीलाल मार्क्सवादी हैं। मजदूरों के नेता हैं। उन्हें आदिवासियों के धर्म-विश्वासों से कोई मतलब नही।

बिल उसी की खोज करता है और उसके लिए वह शिवलाल की दुभाषिए के नाते सहायता लेता है। शायद दोनों में परस्पर विरोध ही दोनों की मैत्री का मूल कारण है। कई बार दो परस्पर विरोधी बिन्दु एक-दूसरे की ओर आकृष्ट होते हैं।

लगता था कि दोनों का यह वाद-विवाद बहुत देर से चल रहा था। और दोनों किसी नतीजे पर नहीं पहुंच रहे थे। दोनों मानो आवृत्तों में घूम रहे थे। जब अपने अपने वर्तुलमें दो व्यक्ति घूमते रहते हैं तो कहां होती है वह रेखा या बिन्दु, जिस पर दोनों मिल पाते हैं। यह ज्यामिती का प्रश्न नहीं, मानवी व्यापार में संभावनाओं और संयोग का व्यापार भी महत्त्वपूर्ण है।

कामरेड वंशीलाल संयोग को नहीं मानते थे। सब कुछ सुनिश्चित था। भौतिक कारणों के भौतिक कार्य···

कामरेड वंशीलाल की मास्टर शिवलाल से बहस कभी खत्म ही नहीं होती थी। दोनों जितना ही एक-दूसरे को समझने का प्रयत्न करते, उतना ही वे एक-दूसरे से दूर पहुंच जाते थे। शिवलाल का प्रश्न था— "आदिम समाज किस तरह से असभ्य है ?"

वंशीलाल—"वह जंगली समाज है। शिकार पर जीता है।"

शिवलाल—"क्या आज के सभ्य समाज के लोग शिकार नहीं करते। वे प्रकृति की और भी लूटपाट करते, ऐसा मुझे लगता है। देखिए, कितना प्रदूषण फैल रहा है।"

वंशीलाल—"वह समाज वैज्ञानिक नहीं था। मनुष्य बुद्धि का उपयोग नहीं करता था।

शिवलाल—यह आप कैसे कह सकते हैं। बुद्धि का अर्थ यंत्र-युग में सापेक्षतावाद और अणु-बम का निर्माण ही है क्या ? प्राचीन भारत में गणित में, ज्योतिष में, वैद्यक और आयुर्वेद में; तर्क और न्याय में कितनी सूक्ष्म चर्चा की गई है, अन्वेषण किये हैं। सारा संसार उनसे चकित है। और आप उन्हें बेपढ़ा-लिखा कहते हैं !"

वंशी—"आप मेरी बात समझ नहीं रहे हैं। वह गुरु-शिष्य परम्परा, वह अपनी विद्या को गुप्त रखना—वह सब बातें कितनी पिछड़ी हुई थी। देखिए, उस समय कवि लोग राजाओं की प्रशस्तियां लिखते थे, देव-दासियां मन्दिरों में आजन्म अविवाहित रहकर नाचती थी। एक-एक मन्दिर के निर्माण में कितने-कितने दासों का जीवन नष्ट होता था। यह कोई सभ्यता थी ?"

कुछ बताया ?

बिल बोला—"नहीं।"

विनीता—"आपने जानने का यत्न भी नही किया।"

बिल—"हम किसी के निजी जीवन को ज्यादा नही जानना चाहते। अपना-अपना जीवन है। कोई छिपाना चाहता है, कोई खोलकर बताना।"

विनीता—"यह भी ठीक ही है।"

"बिल—"पर आपकी उसमें दिलचस्पी क्यों है ?"

विनीता—"मुझे लगता है कि वह मेरा परिचित है।"

बिल—"सो कैसे ?"

विनीता—"उसका चेहरा बहुत कुछ मेरे एक परिचित से मिलता-जुलता है।"

बिल—"कई बार दो चेहरे बहुत एक-से होते है।"

विनीता—"अच्छा ? पर मैं गलती नही कर सकती। मेरे पास यह छायाचित्र है। देखिये।"

बिल ने इस चित्र को उसके कमरे में रखे चित्र से मिलाया और काफी समानता दिखाई दी। हां, मूँछें जो उसने उस समय रखी थी वे वहां नही थी।

यह तै हुआ कि दूसरे दिन बिल उसे शिवलाल के पास ले जायेगा।

वह जब पहुंचे तब शिवलाल के साथ कामरेड वंशीलाल बैठा था। बिल हमेशा सोचता था कि दोनों में क्या समानता है ? क्यों दोनों इतना तर्क करते हैं ?

कामरेड वंशीलाल मार्क्सवादी हैं। मजदूरों के नेता हैं। उन्हें आदिवासियों के धर्म-विश्वासों से कोई मतलब नहीं।

बिल उसी की खोज करता है और उसके लिए वह शिवलाल की दुभाषिए के नाते सहायता लेता है। शायद दोनों में परस्पर विरोध ही दोनों की मैत्री का मूल कारण है। कई बार दो परस्पर विरोधी बिन्दु एक-दूसरे की ओर आकृष्ट होते हैं।

लगता था कि दोनों का यह वाद-विवाद बहुत देर से चल रहा था। और दोनों किसी नतीजे पर नही पहुंच रहे थे। दोनों मानो आवृत्तों मे घूम रहे थे। जब अपने अपने वर्तुलमें दो व्यक्ति घूमते रहते है तो कहां होनी है वह रेखा या बिन्दु, जिस पर दोनो मिल पाते हैं। यह ज्यामिती का प्रश्न नही, मानवी व्यापार में संभावनाओं और संयोग का व्यापार भी महत्त्वपूर्ण है।

कामरेड वंशीलाल संयोग को नही मानते थे। सब कुछ सुनिश्चित था। भौतिक कारणों के भौतिक कार्य···

कामरेड वंशीलाल की मास्टर शिवलाल से बहस कभी खत्म ही नहीं होती थी। दोनों जितना ही एक-दूसरे को समझने का प्रयत्न करते, उतना ही वे एक-दूसरे से दूर पहुंच जाते थे। शिवलाल का प्रश्न था— "आदिम समाज किस तरह से असभ्य है ?"

वंशीलाल—"वह जंगली समान है। शिकार पर जीता है।"

शिवलाल—"क्या आज के सभ्य समाज के लोग शिकार नही करते। वे प्रकृति की और भी लूटपाट करते, ऐसा मुझे लगता है। देखिए, कितना प्रदूषण फैल रहा है।"

बंशीलाल—"वह समाज वैज्ञानिक नहीं था। मनुष्य बुद्धि का उपयोग नही करता था।

शिवलाल—यह आप कैसे कह सकते हैं। बुद्धि का अर्थ यंत्र-युग मे सापेक्षतावाद और अणु-बम का निर्माण ही है क्या ? प्राचीन भारत में गणित में, ज्योतिष मे, वैद्यक और आयुर्वेद मे; तर्क और न्याय मे कितनी सूक्ष्म चर्चा *की गई है, अन्वेषण किये हैं। सारा संसार उनसे चकित है।* और आप उन्हें बेपढा-लिखा कहते हैं !"

वंशी —"आप मेरी बात समझ नही रहे हैं। वह गुरु-शिष्य परम्परा, वह अपनी विद्या को गुप्त रखना—वह सब बातें कितनी पिछडी हुई थी। देखिए, उस समय कवि लोग राजाओं की प्रशस्तिया लिखते थे, देव-दासियां मन्दिरों में आजन्म अविवाहित रहकर नाचती थी। एक-एक मन्दिर के निर्माण में कितने-कितने दासो का जीवन नष्ट होता था। यह कोई सभ्यता थी ?"

शिव—"आप प्राचीन भारत का एकांगी चित्र दे रहे हैं, मित्र ! उसी समय हमारे सर्वश्रेष्ठ शिल्प-स्थापत्य और चित्र-कला के नमूने निर्मित हुए। मौर्य और गुप्तकाल के और उससे भी पहले के मामल्लपुरम्, साची, भरहुत, मीनाक्षी मन्दिर, बृहदेश्वर, एलोरा, अजंता, बाहुबली, खजुराहो, भुवनेश्वर, कोणार्क यह सब प्राचीन और मध्ययुगीन भारत के चमत्कार हैं।"

वंशी—"जाने दीजिये। कला को सामाजिक जीवन दीजिये। मनु को क्या आप प्रगतिशील विचारक कहेंगे ? स्त्रियो और शूद्रो को उसने एक-सा नीचा स्थान दिया। उसी ने वर्ण-श्रेष्ठता का सिद्धान्त चलाया, जो कि आज भी राष्ट्र को घुन की तरह लगा हुआ है।"

शिव—"मुझे यह बताइये कि मनु को छोड़ दीजिये, पर कौटिल्य का अर्थशास्त्र, कल्हण की राजतरगिणी, महाभारत का शातिपर्व, स्मृतिया—ये सब क्या समाज को प्रतिक्रियावादी विचार ही देते है ? अर्थशास्त्र मे तो यहा तक लिखा है कि जिस राजा को प्रजा को सुखी रखने की राज्यकला नही आती, उसके विरुद्ध विद्रोह कर देना चाहिए। हर शास्त्र को परीक्षा के अनन्तर ही ग्रहण करना चाहिए, यह विधान है।"

वंशी—"वह सब प्राचीन भारत की बात छोड़िये। आज की दशा देखिये। यहा कुलियो की ज़िंदगी देखिए। बंबई मे होटल मज़दूरों और कलकत्ता मे रिक्शा चालको की ज़िंदगी देखिये। इतनी गदगी मे वे रहते हैं। ऐसी चालो, खोलियों, बस्तियो, और झुग्गी-झोपड़ियों मे रहकर आप धर्म और भारतीय सस्कृति की महानता की बातें करते हैं। आपको इसमे कोई विरोधाभास और लज्जा नही जान पड़ती ?"

शिव—"आप विषय से दूर जा रहे हैं। यह सब शहरी ज़िन्दगी की बुराइया फिर उसी प्राचीन जीवन-पद्धति और सांस्कृतिक मूल्यों की पवित्रता से दूर जाने के कारण है। आज का मानव एकदम आचार-च्युत हो गया है। आप लोगों ने उसे क्षुधा-काय का एक पशु मात्र बना दिया है। यदि राजनीति तामसिकता पर आधारित होगी तो मनुष्य

सात्विकता की ओर कैसे मानेंगा ?"

वंशी—"आप जीवन को एकांगी दृष्टि से देख रहे हैं। आप मनुष्य के भीतर के पशु को भुलाकर केवल देवता की बात कर रहे हैं। एक के बिना दूसरा बेमतलब है।"

"शिव—आप मनुष्य को एक युद्ध-भूमि बना रहे हैं।"

वंशी—"मैं नहीं बना रहा हूं आपकी गीता ने वैसा ही बना रखा है। मुझे तो गीता एक गोलमोल किताब लगती है, जिसमें सबको खुश करने की व्यवस्था है। उसके कितने-कितने अर्थ किये गये।"

शिव—"यह उस किताब की महानता है या क्षुद्रता? उसकी सामर्थ्य है या सीमा।"

वंशी—"जाने दीजिए, आप हमारा द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद जान-बूझकर समझना नहीं चाहते। असली बात यह है कि हिन्दुत्व का विकल्प बुद्ध ने ही बहुत पहले सामने रख दिया था।

शिव—"फिर वह चला क्यों नहीं? भारत में ही उसका क्षय हो गया। बाहर वह फैला।"

वंशी—"आपके गांधी का क्या हुआ? यहां कोई उनको आचरण में लाता नहीं। रिचर्ड एटनबरो ने फिल्म बनाई और वह सारी दुनिया में चल गई।"

शिव—"दुनिया मानेगी या न मानेगी, क्या इसी पर भारतीयता निर्भर है? आपके रूस के साम्यवाद को कितने वर्षों बाद बाहर की दुनिया ने अपनाया और कितना अपनाया ?"

वंशी—रूस की क्रांति को 65 वर्ष हुए हैं—एक शती भी पूरी नहीं बीती। एक तिहाई दुनिया आज साम्यवादी है। भारतीय संस्कृति तीन हजार बरस पुरानी है, कितने लोग हिन्दू बने हैं ? भारत के बाहर ?"

शिव—"हम धर्मान्तर करने में विश्वास नहीं करते। जो ऐसा धर्मान्तर करता है, वह कल और दूसरा कोई धर्म नहीं अपनायेगा, इसका क्या भरोसा है ?"

वंशी—"मैं भौतिकवादी हूं। और धर्म के दिन अब गिनती के हैं, ऐसा मैं मानता हूं।"

शिव—ऐसा होता तो धर्म के नाम पर इतने संघर्ष—ईरान-इराक, लेबनान, जेरुसलम, इजराईल, आयरलैंड आदि में होते ही क्यों ? अभी भी धर्म के लिए प्राण देने वाले लोग सारी दुनिया मे है ।"

वंशी—"मैं कहता हूं, अब भी जंगलीपन शेष है, तो इससे आदमी के सभ्य होने का दावा क्या गलत हो जाता है ?"

यह बहस यों ही चलती रहती कि बिल आ गया। उसने कहा कि 'सुनो शिव एक लडकी मेरे पास आई है और वह तुमसे मिलना चाहती है।

शिव—"कौन है वह ?"

बिल—"वह कलकत्ते से आई है और अपना नाम विनीता बतलाती है। वह तुम्हारा फोटो देखकर ही बड़ी 'इम्प्रैस' हो गई।"

शिव भीतर ही भीतर सिहर उठा। पुन: वही एच. आर. के लम्बे-लम्बे हाथ रक्त-रंजित नाखून—एक बड़ा-सा मकड़ा या आक्टोपस—उसके खून का पिपासु। अब वह कहां बच पायेगा ?

फासी का फदा और जेल के सीखचे उसे दिखाई देने लगे। वह वहां से उठकर चल दिया। अब वह विचार करने लगा कि कहीं भागकर चला जाये। पर कहां जायेगा वह इस तरह से इतना जल्दी। रात को उसे ठीक तरह से नींद नही आई।

सवेरे ही उसके दरवाजे पर खटखट हुई और उसने दरवाजा खोलकर देखा तो विनीता खड़ी थी।

पहले तो विनीता कुछ बोली नही।

शिव ने कहा—आओ अंदर।

विनीता धीरे-धीरे उस छोटे-से कमरे मे आई। अपने बेतरतीब कागज इधर-उधर ठीक-ठाक करके शिव ने कहा—"बैठो।" एक छोटी लकड़ी की फोल्डिंग-चेअर उसने आगे कर दी।

विनीता बैठ गई।

शिवलाल ने ही बात शुरू की—"क्या तुमने समझ लिया था कि मैं

शिव—ऐसा होता तो धर्म के नाम पर इतने संघर्ष—ईरान-इराक, लेबनान, जेरुसलम, इजराईल, आयरलैंड आदि मे होते ही क्यो ? अभी भी धर्म के लिए प्राण देने वाले लोग सारी दुनिया मे हैं।"

वंशी—"मैं कहता हूं, अब भी जंगलीपन शेष है, तो इससे आदमी के सभ्य होने का दावा क्या गलत हो जाता है ?"

यह बहस यो ही चलती रहती कि बिल आ गया। उसने कहा कि 'सुनो शिव एक लडकी मेरे पास आई है और वह तुमसे मिलना चाहती है।

शिव—"कौन है वह ?"

बिल—"वह कलकत्ते मे आई है और अपना नाम विनीता बतलाती है। वह तुम्हारा फोटो देखकर ही बड़ी 'इम्प्रेस' हो गई।"

शिव भीतर ही भीतर सिहर उठा। पुन: वही एच. आर. के लम्बे-लम्बे हाथ रक्त-रंजित नाखून—एक बड़ा-सा मकड़ा या आक्टोपस—उसके खून का पिपासु। अब वह कहां बच पायेगा ?

फांसी का फंदा और जेल के सीखचे उसे दिखाई देने लगे। वह वहां से उठकर चल दिया। अब वह विचार करने लगा कि कहीं भागकर चला जाये। पर कहां जायेगा वह इस तरह से इतना जल्दी। रात को उसे ठीक तरह से नींद नहीं आई।

सवेरे ही उसके दरवाजे पर खटखट हुई और उसने दरवाजा खोलकर देखा तो विनीता खड़ी थी।

पहले तो विनीता कुछ बोली नहीं।

शिव ने कहा—आओ अंदर।

विनीता धीरे-धीरे उस छोटे-से कमरे मे आई। अपने बेतरतीब कागज इधर-उधर ठीक-ठाक करके शिव ने कहा—"बैठो।" एक छोटी लकड़ी की फोल्डिंग-चेयर उसने आगे कर दी।

विनीता बैठ गई।

शिवनाथ ने ही बात शुरू की—"क्या तुमने समझ लिया था कि मैं

सचमुच मर गया ?"

और वह खुद ही हसा।

अब बारी विनीता की थी—"जो लोग ऐसी धमकी देकर साथ मे अपनी डायरी छोड़ जाते हैं, वे वैसा करते नही। अगर आप मर जाते तो उस डायरी की वे सुन्दर-सुन्दर कविताए पढ़कर बाद मे कौन आपको दाद देने आता।"

शिवलाल—"क्या सचमुच वो तुकबन्दियां तुम्हें अच्छी लगी ?"

विनीता—"हां, मैं झूठी प्रशंसा नही करती।"

शिवलाल—"चलो, किसी ने उन्हें पढा और उनका नोटिस तो लिया।"

विनीता—"आपकी कविता में बार-बार मृत्यु का उल्लेख और संकेत क्यों आता है ?"

शिवलाल—"मुझे लगता है कि जो इतना उच्छल सागर है वह चौदह रत्नों के छिपने का स्थान है। वह उन मूल्यवान वस्तुओ की मौत ही तो है। चंचलता सिर्फ बाहरी है। भीतर हाहाकार है, ज्वाला है।"

विनीता—"तुम समुद्र को अपने ऊपर घटित कर रहे हो ?"

शिवलाल—"नही, इस हिमालय को ले लो। शिव तांडव करते-करते मानो यहां कीलित हो गये। जड़ीभूत हो गये।"

विनीता—"हो सकता है प्रकृति में ऐसी लुका-चुरी, ऐसा विरोधाभास भरा हुआ हो, पर मनुष्य में भी क्या ऐसा ही होता है।"

शिवलाल—"मनुष्य अपने आपसे, अपने मूल स्वभाव और धर्म से भागता फिरता है। जितना ही भागता है, उतना ही वह दुखी होता है। शायद इस दुःख मे ही उसका सुख छिपा है।

विनीता—"आप इस तरह की बातें करने में बहुत अभ्यस्त हो गये हैं। है जरूर मानव जीवन एक पहेली। और इसका बुझौवल भी शायद उसी मे छिपा है।"

शिवलाल—"मुझे कभी उम्मीद नही थी कि आप मुझे इस तरह से यहां सहमा मिल जाओगी।"

विनीता—"योगायोग है।"

शिवलाल—वियोग के बाद संयोग कितना मधुर कितना कटु ?"

विनीता—"जो भी हो, अब बताओ कि तुम्हारा आगे क्या प्रोग्राम है ?"

शिवलाल—"कुछ नही—यही स्कूल जाना, बच्चों को पढ़ाना। शाम को किसी के साथ गप्पें लड़ाना। मन्दिरो में घूमना···।"

विनीता—वह दैनिक कार्यक्रम नही पूछ रही हूं। जीवन क्या इसी हिमालय से बंध गया है अब ? सारा भविष्य यही इसी शिमले में बिताना, है ?"

शिवलाल—"ऐसी प्रतिज्ञा तो मैंने नही की।"

विनीता—"फिर बोलो, आगे कहां जाना है ? जीवन की दिशा क्या है ?"

शिवलाल—"वही तो मैं नही जानता, विनीता !"

विनीता—"मैं कहती हू शिव, जीवन से भागो मत। उसका सामना करो।"

शिवलाल—"मैं जीवन मे कोई अच्छी चीज नही देख पाता।"

विनीता—"यदि अच्छाई न हो तो बुराई का कोई अर्थ नही होता।"

शिवलाल—"यह सब बोलना ठीक है, परन्तु व्यावहारिक जीवन मे बुराई ही बुराई अधिक है।"

विनीता—"ऐसा मै नही मानती।"

शिवलाल—"अपने-अपने मानने की बात है।"

विनीता—"आज तो बिल और वंसीलाल यहां हैं। मैं आपसे एकान्त मे आकर मिलूगी।"

शिवलाल ने समय दिया और निश्चय हुआ कि वह मिलने आयेगी, उस समय वहां कोई नही होगा।

शिवलाल को विनीता का आग्रह टालना मुश्किल था। उसने कहा—'मैं वापिस उस जयामाता की हवेली में नही जाऊंगा, वहां मेरा दम घुटता है। उस अध्यात्म की आराधिका के आसपास कैसे-कैसे बदमाश आन जुटे हैं। वह सेठ झंगियानी और उसके एक से एक घुटे हुए दोस्त। वह सारा धर्म की ओट मे चलने वाला व्यापार। वह भोले विदेशी-जो इस तरह की भारत की तस्वीर बाहर पेश करके यह समझते है कि अफ्रीका-एशिया में आनेवाले तूफान को वे रोक सकेंगे। बूढे किंग कैन्यूट ने यही सोचा था। *तलवार चला-चलाकर वह बढ़-बढकर आनेवाली समुद्र की लहरियो को* पीछे ठेलता जाता था।'

विनीता ने कहा—"मैं तुम्हे कलकत्ता वापिस जाने के लिए नही कह रही हू। तुम्हारी जहां इच्छा हो, जाओ। पुरी के समुद्र-तट पर जाओ।"

"मैंने वहां समुद्र के बहुत बडे-बडे चित्र बनाये थे, पर मेरा मन भरा नही। वहा उस सागर को एक अजुल मे पी जाने वाली अगस्त्य का साहस मुझमे नही। मुझे एक आदिवासिनी लड़की ने बता दिया कि अकेला आदमी अधूरा है। जो अर्ध-काम है वह अर्ध-मुक्त है, यानी वह सदा बँधा हुआ है।"

विनीता—"वह कौन थी आदिवासिनी ?"

शिवलाल—"वह मेरे लिए शक्ति की प्रतीक थी। वह देवी भैरवी *बन गई। मैं उसे कभी नही पा सकूंगा। मुझे उसने बहुत अच्छी तरह बता* दिया कि मैं आत्म-प्रतारक था।"

विनीता—"क्या वह तुमसे प्रेम करती थी ?"

शिवलाल—"यह कहना कठिन है। हर शिव शक्ति से प्रेम करता है। पर शक्ति हर एक को शिव नही मानती।"

शिवलाल—"तो तुम्हें कलकत्ता नही, पुरी नही, तो केरल जाना चाहिए। वहां सुन्दर समुद्र तट है। गोआ जाना चाहिए···।"

शिवलाल—"मैं सब जगह भटका हूं। लापता, बेठिकाना जहाज की तरह घाट-घाट गया हूं। पर मेरा बदरगाह वहां नही है, न कोच्चीन मे, न पणजी मे। मैं समझ गया हू कि मेरी नौका डांड-हीन और पाहैल, हीन है। वह राह मे ही टूट जायेगी।"

विनीता—"तुम कविता की भाषा मे बोलते हो। समुद्र नही तो पर्वतराज तुम्हें अवश्य अपना पता देने मे सक्षम रहा होगा।"

शिवलाल हंसा। फिर धीरे-धीरे बोला—"पहाड़ किसी से बोला नही करते। वे बड़े चुप्पे होते हैं। सिर्फ चांदनी रात में हसा करते हैं। देवताओं का अट्टाहास—वह हिमधवल महाराशि!"

विनीता—"मौन मे ही वे उत्तर देते होंगे प्रश्नो के।"

शिवलाल—"उनकी भाषा सब नही समझ सकते। कुछ-कुछ रोरिक समझते थे। 'रुद्रवीणा' बजाने वाले मौन योगी पार्वती को समझते हैं शायद। बहुत लोग कैलाश-मानसरोवर की यात्रा कर आते हैं। कुछ अच्छे यात्रा-वर्णन लिखते है। कुछ अच्छे फोटो खीचकर लाते हैं। प्रज्ञानानद की तरह सुन्दरानद की तरह पर हिमालय के गूढ-रम्य सौन्दर्य को कौन समझ पाया है अब तक?"

विनीता—"यदि समुद्र नही, हिमालय नही तो आपकी असली पहचान पाने का आधार क्या था?"

शिवलाल—"ऐसा है विनीता, मैं खुद नही जानना कि मैं क्या खोज रहा था। मेरे दिमाग मे ही कोई फितूर था। कुछ था जो मुझे एक जगह चुपचाप बैठने नही दे रहा था।"

विनीता—"पर ऐसा करने मे शिवलाल—, तुम बुरा मत मानो, पर मैं तुम्हें चाहती हू और उसी अधिकार से पूछती हूं—तुमने कितने लोगो पर अन्याय नही किया?"

शिवलाल—"मुझसे न्याय किसी ने मांगा ही नही था।"

विनीता—"इसलिए क्या तुम अन्याय करते जाओगे, सब पर?"

शिवलाल—"किस-किस पर मैंने अन्याय किया?"

विनीता—"सोचो—अब तुमने अपनी सारी कहानी बता दी है, तो पहले तो अपने पिता पर, जिसे कोई सूचना न देकर तुम भाग निकले।

फिर भाई पर—जो तुम्हारे पीछे मारा-मारा फिरा। फिर एडिथ पर कृपा पर, देवी पर, शीला पर, यहा तक कि विनीता पर भी तुमने अन्याय ही किया···।"

शिवलाल—"नही, मैंने किसी के साथ कोई बुराई नही की। मैं सबकी इज्जत करता रहा, मैं सबको प्रेम करता रहा।"

विनीता—"प्रेम सिर्फ दिखाया नही जाता। वह कुछ देने के लिए भी आगे बढता है। वह झुकता भी है। जो प्रेम अहंकार को बढावा देता है, जो 'मैं' से शुरू होता है, वह 'मैं' मे ही जाकर समाप्त हो जाता है।"

थोड़ी देर दोनों मौन रहे।

शिवलाल ने कहा—"मान लो क्षण-भर के लिए कि मैने गलती की। तो अब उस सब पुरानी भूल से क्या निस्तार है? कही भी क्या प्रातश्चित्त की कोई गुंजाइश नही"

विनीता—"आत्मा खो देने पर शून्य ही हासिल होगा।"

शिवलाल—"नही, कोई तो उपाय होगा? कोई तो इसमे से रास्ता बतायेगा। इस सुरंग का कोई अंत होगा ही। यह भूलभुलैया जन्मजन्मान्तर नही चलेगी।"

विनीता—"वह राह भी तुम्हें ही बनानी होगी। वापिस जाने का मार्ग भी आंख पर पट्टी बांधकर जो लोग तुम्हें यहा तक लाए हैं, और यहां तक छोड गये हैं, वे नही बतायेंगे।"

शिवलाल ने कहा—"विनीता, मै हार मान गया। अब तुम जो कहोगी वही मैं करूंगा।"

विनीता—"तो चलो, मैंने दो टिकट कालका मेल के कटाये है। शिमला से कालका, वहां से दिल्ली और दिल्ली मे रामकृष्णपुरम्। अपने घर चलो।"

शिवलाल—"वे क्या कहेंगे?"

विनीता—"वे कुछ नही कहेंगे। उनकी आखो मे खुशी के आंसू होंगे।"

और वही हुआ।

दूसरे दिन अरविंद अपने घर लौट गया। सब लोग चकित हुए। यहां तक कि उसकी सौतेली मा, जिससे चिढकर वह घर छोड़कर भागा था— उसे पहले तो अपनी आखों पर विश्वास नही हुआ। बाद में उसी ने आरती उतारी। उसे प्रणाम करने के लिए घर के छोटे बच्चों से कहा। मिठाई मंगवाई। जश्न किया गया।

यह एक अद्भुत पुर्नमिलन था। इसमे सुख-दुख मिले हुए थे। पिता बहुत क्रुद्ध था, पर अब वह एकदम शात हो गया, सुप्त ज्वालामुखी की तरह।

बच्चो ने तरह-तरह के प्रश्न पूछने शुरू किये—"कहां थे, अंकल! इतने दिनो तक आप...क्या करते रहे?"

पहले अरविंद के मन मे आया कि सच-सच बता दूं। फिर डर लगा कि कहीं इस सचाई से आकर्षित होकर बच्चे वैसा ही 'मिस अंडवेंचर' (दुस्साहस) न कर बैठें।

सो अरविंद ने कहा—"मैं विदेश गया था।"

बच्चे—"कहा गये थे आप?"

"मैं नई दुनिया में गया था।"

"वहा क्या देखा?"

"वही समुद्र, जंगल, पहाड़। वे सब वैसे ही थे जैसे अपने देश मे हैं।"

"पर वहा हमारे देश से अलग क्या था?"

"वहां के आदमी।"

"उनमे अलगपन क्या था?"

"वे सब अपने जीवन के उद्देश्य के बारे मे सुनिश्चित थे। उनमे कोई भी निरुद्देश्य नही था।"

"क्या वहां बेकार नही थे?"

"नही, वे हमारे देश की तरह नही थे। न इतनी संख्यायें, न इतने आशाहीन।"

"क्या वहा भिखारी नहीं थे?"

"नही थे।"

"क्या वहां बच्चे मजदूर नहीं थे ?"

"नहीं थे ।"

"यह ऐसा क्यों हुआ ? वह तो हमारे बाद की आई हुई दुनिया थी। फिर भी इतना अंतर ?"

"इसीलिए ऐसा अंतर था। हम सब अपने संस्कारों से जकड़े हुए लोग हैं। हमें अपनी पुरातन संस्कृति का अभिमान है। हम उसे छोड़ना नहीं चाहते। और नई दुनिया की सब अच्छाइयां भी चाहते हैं। खंडहर खंडहर भी बना रहे और फिर से राजमहल भी बन जाये, यह कैसे सभव है ?"

"हम आपकी बात पूरी तरह समझ नहीं पा रहे हैं, अंकल !"

एक दूसरे बच्चे ने पूछा—"आपको वह नई दुनिया इतनी अच्छी लगी तो आप वहीं बस क्यों नहीं गये ?"

"वहां बसना मना था।"

"क्यों ?"

"उन्हें डर था कि बाहर के लोग आकर हमारा सब सोना, हमारे सब वैज्ञानिक, गुप्त ज्ञान-विज्ञान, विशेषत: शस्त्रास्त्र आदि ले जायेंगे।"

"पर क्या नई दुनिया के लोग अपना सोना, शस्त्रास्त्र, वैज्ञानिक, उपकरण सब बेचते नहीं फिरते ?"

"हां, बेचना अलग बात है। हम अपने यहां का घटिया माल बेचकर ज्यादा मुनाफा कमा ही सकते हैं।"

"पर यह बताइये अंकल, सबसे मूल्यवान वस्तु क्या है ?"

"सोना ? शस्त्रास्त्र ? वैज्ञानिक ? उपकरण ?"

"नहीं, उनसे भी मूल्यवान क्या है ?"

"मैं नहीं समझा तुम्हारी बात।"

"अपनी पहचान। अपनी आत्मा।"

यह आखिरी उत्तर बच्चों ने नहीं दिया था। यह वहां पर आई हुए ऊषा ने दिया। उसका परिचय सबसे करा दिया गया।

विनीता ने ऐसी व्यवस्था कर दी थी कि जब वह वहां पहुंचे तो तुरंत बाद वहां ऊषा भी पहुंच जाये।

सब बच्चों को ऊषा ने मिठाई बांटी। अपनी भाभी को पाकर सबको बड़ी खुशी हुई। दूसरे दिन ऊषा के घर के लोग भी आनेवाले थे।

अब सभी यह रहस्य विनीता से पूछने लगे कि अरविंद और आशुतोष या शिवलाल एक ही है, यह विनीता को पता कैसे लगा? पहले तो विनीता ने बहुत आनाकानी की, फिर वह कहने लगी—"यह रहस्य मैं क्यों बता दू?"

"नही-नही, दीदी! तुम्हें यह बताना ही होगा।

"*मुझे क्या इनाम मिलेगा।*"

"जो चाहोगी वही तुम्हे देंगे।"

"अब अपने अरविंद पर कभी गुस्सा मत करना। उसे कभी कुछ न कहना।

"यह तो बहुत छोटी-सी बात हुई।"

"नही, यह छोटी-सी बात नही है। अलगाव यही से शुरू होता है। स्नेह की कमी अजनबीपन की शुरुआत है।"

"पर क्या प्रेम देने से पहचान बढ़ती है।"

"वही पहचान है। असल मे सही पता-ठिकाना वही से लगता है।"

"ऊषा और अरविंद अब एक दूसरे को कभी नही छोड़ सकते।" विनीता ने कहा।

सारा घर आनद और उल्लास से भर उठा। जैसे किसी बड़े भारी आदिम रहस्य का सही पता लग गया। स्फिक्स की मुसकान का गुप्त संकेत सबको मिल गया। मोहनजोदड़ो की चित्रलिपि सबने पढ ली, गुन ली।

यही से प्रलय के बाद सृजन शुरू होने वाला था···

पहचान का मूल-सूत्र वह एक छोटा-सा तिल था, जो अरविंद मलहोत्रा की ठुड्डी से बाईं ओर बना हुआ था।

आदमी वह जन्म-चिह्न नही बदल सकता।

वही विनीता के फोटो के एन्लार्जमेंट मे *स्पष्ट था और* उससे मिल गया था। बिल का खींचा हुआ मास्टर शिवलाल का फोटो—उसी

एंगल से।

दोनों के एनलार्जमेंट साथ-साथ थे।

और अरविंद अपने घर लौट आया था, बिना किसी की कोशिश के। घरवाले उसका पता पा चुके थे।

अब वे इस फिक्र में थे कि कहीं वह पुनः भाग न जाये।

ऊषा फिर अरविंद से आकर मिल गई थी। जीवन की भागमभाग अब अपनी दौड़ के आखिरी मुक़ाम पर आ पहुँची थी।

संगीत फिर 'सम' पर आ गया था। आदि कवि ने पुनः छन्द का प्रथमाक्षर पा लिया था—'मा...'

शेष प्रश्न

कुछ ऐसे प्रश्न होते हैं जिनके उत्तर निःशेष होते हैं।

डाकघर में मैंने एक 'मृत पत्रों का कार्यालय' देखा है। पत्र जिसे भेजा गया है उसे न पहुंचने से 'टेस ऑफ द डरबरविले' में हार्डी कैसी ट्रेजेडी की धार बढ़ाता है।

अन्तोन चेखफ़ की एक कहानी मे एक बच्चा अपनी मरी हुई मां को ईश्वर के ठिकाने पर चिट्ठी भेजता जाता है। 'शरणार्थी' मे 'अज्ञेय' की भी ऐसी ही एक कहानी है।

एक चिट्ठी गलत जगह पहुंच जाने से कितनी गलतफ़हमियां बढ़ जाती हैं।

यह सब तो पत्रों के मामले में होता ही रहता है। जो सही ठिकाने पर चिट्ठियां नहीं पहुंचती, वे नष्ट कर दी जाती हैं।

परन्तु हर आदमी भी एक तरह का पत्र ही होता है। एक संदेश-वाहक। कई बार वह भूल जाता है कि कौन-सा संदेश वह वहन कर रहा होता है। वह अपना सदेश स्वयं नही जानता।

होता यह है कि वह निरा लिफाफा होता है, या एक 'निमित्तमात्र'। 'यन्त्रारूढानि मायया'—यह मनुष्य जिस सन्देश को ले जाता है वह शब्दो में नही होता। वह एक ऐसी लिपि मे होता है, जो मोहन जोदड़ो की चित्रलिपि की तरह उसके लिए अगम्य होती है।

नही-नही। वह सकेताक्षर होते हैं। वह अपने हृत्पटल पर एक तरह की 'गुप्त भाषा' (कोड लैंग्वेज) लेकर चलता है।

(इस कहानी मे स्मगलर लोग कई नामों से चेहरा बदल-बदलकर घूम रहे थे! कभी वे नेता बन जाते हैं, कभी अभिनेता! पर उद्देश्य उनका

सब एक ही होता है।)

इन सबकी शिकायत एक ही होनी है—'म्हारो दरद न जाने कोय'

ये सब 'एक हिलोर इधर से आई, एक हिलोर उधर को जाये' वाले दिशाहीन वायु-संकेत होते है।

कभी हम उन्हे पढ पाते हैं, कभी नही पढ़ पाते।

'क्रांतिया दबे पाव आती हैं'—नीत्शे ने कहा था।

तो जल्दी-जल्दी मे उसे बनाने वाले ने उस कबूतर के गले मे जो सन्देश लिखा वह या तो अधूरा ही लिखा था, कहा पहुचाना है! वह पता लिखा ही नही। ऐसे भी कई लोग होते है।

पर समुद्र मे चारो ओर लहरियो से घिरे एक एकाकी द्वीप पर कुछ नाविक अकेले पडे है। वे बोतलो मे बंद करके अपनी परिचित लिपि मे सन्देश भेजते रहते हैं—तरगो मे उछाल देते हैं—कि कभी न कभी, कोई न कोई, कही न कहीं, इस सन्देश को पायेगा और इनका उद्धार करने आ जायेगा।

मनुष्य की आशा बदलती है। जब तक सांसा; तब तक आशा।

इसे मार्क्सवादी शब्दों मे कहा जाये तो यह एक ऐतिहासिक अनिवार्यता है कि मनुष्य संघर्ष करे—बेहतर जिंदगी के लिए। पत्थर की चकमक से आग पैदा की। अरणि से यज्ञकुड बना तो भूनकर अन्न खाने लगा। आग से खेत के बचे शस्य-मूल जलाकर 'सुभ' की खेती की। वह सभ्य और 'सुसंस्कृत' बनने लगा। खेती में उसने पालतू जानवर लगाये। दास-दासी रखे। धीरे-धीरे उसका ग्राम-राज्य बनने लगा। वह उसका भू-स्वामी, जमीदार, जागीरदार, ठाकुर, 'फ्यूडल लार्ड', हाकिम, 'गो'-स्वामी बना। उसके लिए शास्त्र बने। राजा को विष्णु का अंश बताया गया। राजा कालस्य कारणम्। कालाय तस्मयेनमः ...

राजा से महाराजा बनते कितनी देर लगती है। युद्ध हुए। साम्राज्य बने। थल सेना, जल सेना, वायु सेना, अंतरिक्ष सेना...

मनुष्य-मनुष्य से कतरा लगा।

जिस जमीन को वह जोतता था उसी से वह अलग-अलग हो गया। जंगल तो कभी का पीछे रह गया था। जिस यंत्र को उसने बनाया कि वह उसके श्रम को कम करे—उलटे उस यंत्र ने जो वस्तु पैदा की उसी से उसका अलगाव बढता गया। एक तरह से वह अपनी पहचान धीरे-धीरे खोता गया।

जो वस्तु उसने बनायी, वह उसे मिली नहीं।

मालिक को सिर्फ़ मुनाफ़ा मिला। वस्तु तो यंत्र मे दूर ही होती चली गई।

मनुष्य और मनुष्य के बीच मे *अब धर्म-ग्रंथ, कानून की पुस्तक, राज्य-संस्था नही*—पैसा आ गया। वही पुल था, वही दीवाल थी।

मनुष्य पैसे मे भी अजनबी बनता चला गया। उसकी आत्मा को उसने इटैलियन सगीतकार पैगानिनी की तरह से शैतान को बेच दिया।

इसी बात को धर्म और अध्यात्म की शब्दावली मे कहा गया कि मनुष्य अपने स्रष्टा, अपने निर्माता, ईश्वर से दूर हो *गया था*। ईश्वर उसके लिए कोहो मे ढकी सच्चाई बन गया।

ईश्वर सोचने लगा कि अरे, यह जो मैंने निर्मित किया था, वह कहा गया? क्या वह उस मां की तरह था, जिससे उसका बच्चा कहीं दूर चला गया है। या जो जंगल मे राह भटक गया है।

क्या वह यशोदा का *कृष्ण है, या* देवकी से वह दूर *भाग गया है?* क्या वह अज्ञातवास मे है?

अकिलस की मां, जब वह शिशु था तो नदी पर ले गई। वह उसके हाथ से फिसलकर नदी में बह ही जाता कि उसकी एड़ी अकिलस की मां के हाथ में बची रह गई—वह अवध्य बनी।

गांधारी को अभिशाप था कि वह अपने बच्चे को देख न सके। और जब वह दुर्योधन को एक बार देखकर अमर बनाने वाली थी कि कृष्ण ने उसे फूलो की जघिया पहना दिया। उतना ही उसका अंशवेध्य बन गया।

मनुष्य घर से भूला-भटका एक मुसाफिर है। वह सुबह का भूला शाम

को लौट भी आ सकता है।

पर कई नक्षत्र मूल ज्योतिष्कपिंड छूटकर सिर्फ आकाश को क्षणभर आलोकित कर क्षार-क्षार हो जाते हैं। वे उपलमय होकर पृथ्वी पर खंड-खंड बिखर जाते हैं। उल्काओं से कोई उनका पता नही पूछता।

वह इस तरह से धुरी-हीन प्राणी क्यों बन जाता है? क्या वह उसके अपने हाथ में है?

सारे मर्मी और रहस्यवादी कवि कहते हैं कि इस पर उसका बस नही।

'गुरुबिन कौन बतावै बाट, विकट घाट जमघाट···

'भंवर मे नैया परी, उस पार खिवैया···

'लगा दे मोरा ठिकाना, मोरे कान्हा'···

'शिवम् त्राण केवलम्···'

आदि-आदि। सब घर्मो मे, सब पथों मे मनुष्य की यही असहाय अवस्था है। मानो वह इस भवसागर मे धकेल दिया गया है। तैरना जानता नही। और 'कोई' शक्ति है, जो उसका उद्धार करेगी! उसे उठा लेगी। रक्षा करेगी, सब सकटों से···

मनुष्य ने यहां आस्था का दीप-स्तंभ सदियों से बनाया था।

उसे उन्नीसवी सदी तक आते-आते विज्ञान के हाथों उसने स्वयं ध्वस्त कर दिया।

नीत्शे ने कहा—'क्या यह तुम्हारे लिए समाचार नया है कि ईश्वर ने कभी की आत्महत्या कर ली!'

मार्क्स ने कहा—'नही है इस विश्व का कोई बनानेवाला, न संहार करने वाला।'

मनुष्य ही मनुष्य को डुबोने वाला और डूबने से बचाने वाला है।

तो, अब इस लापता मनुष्य का पता भी मनुष्य को ही खोजना होगा।

कैसे खोजे वह यह पता ? कई तरह के उत्तर मिल रहे हैं `
"कला से ?"
"हृदय की वाणी', 'भीतर की आवाज़', 'अन्तर्प्रज्ञा' से ?"
"धर्म और विज्ञान के समन्वय से ?"
"इतिहास से सबक लेकर, उसी के मानचित्र के सहारे ?"
"प्रयत्न और गलती करते जाने' (ट्रायल एंड एरा) से।"
"सही शिक्षा से ?"
"संयोग से।"

सब आदमी सब तरह की खोज में माहिर नहीं होते। ज्योतिषी दूरबीन से देखते हैं। पनडुब्बी मे बैठकर समुद्रतल का खोजी अवगाहन करता है। अन्तरिक्ष यात्री ग्रह-नक्षत्रों तक पहुंचना चाहते हैं। जंतु शास्त्रज्ञ सूक्ष्मवीक्षण यत्र से देख रहे हैं। बर्फ में जहाज रास्ता काटता हुआ एंटार्टिका (दक्षिण ध्रुव) और साइबेरिया में अतल और अगम की खोज कर रहा है।

मन के भीतर कितने और मन हैं ? पराविद्या क्या है ? तंत्र तन और मन के बीच क्या क्या रासायनिक और भू-तांत्रिक परावर्तनों में पैठना चाहता है ?

मनुष्य की खोज जारी है—भीतरी, बाहरी। यहा, वहां।

कही उसे शांति या तृप्ति नही है।

क्योंकि मनुष्य को अपना सही पता, अपनी मंजिलें-मकसूद अभी हासिल नही हो सकी है।

जो कहानी आपने पढ़ी, उसके भी पात्र इसी उधेड़-बुन और भटकन मे मुब्तिला थे। हमने उन्हे कुछ झलकियों में नजदीक से देखना चाहा।

"पते की बात' हम भी नही पा सके।"

पर शायद वे नष्ट होने से बचा लिये जा सके पत्रों जैसे हैं। उन्हे

ठिकाना बदलकर फिर भेज दिया गया है। कुछ बैरंग भेजनेवाले के ही पास पहुंच आये हैं। कुछ के पते ज्यादा साफ लिखावट मे पुनः लिखवा लिये गये हैं। कुछ सही पते पर पहुंचे। पर वहां जिस 'तक' पहुंचना था, वही नही है। वह वहां से जा चुका है, या इस मर्त्यलोक से ही कूच कर गया है।

ऐसे सब प्रश्नो से घिरे हैं हमारे चरित्र, हमारे पात्र, हमारे लापता मित्र···

"यत्र कुशलं तत्रास्तु' कुछ पर लिखा है।"

"कुछ खुले हैं, कुछ बंद हैं।"

"कुछ रजिस्टर्ड हैं, कुछ अनरजिस्टर्ड ।

"कुछ विद्या से भरे हैं, कुछ अविद्या से।"

"कुछ पुराने ही कागजो पर नये बंडल हैं तो कुछ नये कागजों से लिपटे पुराने बंडल—कुछ पत्र-बम"।

"हम सब पात्र नही', पत्र हैं।"

'पत्र', पुष्प, फलं, तोयम्'

I
I
ea
ff
a(1
one
l
in
ess)
ll
in
g

—e. e. commings (1957)

(यह तेरह अक्षरों की एक चित्र-बंधात्मक कविता है, जैसे पत्ता गिर रहा हो, इसमें लिखा है 'ए लीफ़ फालिंग' और ब्रैकेट में 'लोन्लीनेस')

एक पत्ता गिरता है
अकेला झरता है
उसका क्या पता है ?

ज्ञान प्रिन्टर्स, दिल्ली-110032